कुछ सम्मतियां

श्री हनुमानप्रसादजी पोद्दार संपादक 'कल्याण' गोरखपुर

कल्याण कैम्प रतनगढ

चैत्र शुक्ला ६ स० २००८ रामनवमी

हिन्दु शास्त्रों के प्राय सभी महत्वपूर्ण प्रसंग विज्ञान सम्मत हैं। इन्हीं में एक स्वरोदय भी है। स्वरोदय विज्ञान पर सस्कृत में तो कई पुस्तकें मिलती हैं परन्तु हिन्दी में इस विषय पर कोई उत्तम पुस्तक देखने में नहीं आई थी। हमारे सम्मान्य प० रामेश्वरलालजी शर्मा B. A., LL. B., के द्वारा लिखित 'तेज स्वरोदय विज्ञान' नामक पुस्तक इस कमी को बहुत अशों में पूर्ण करती है। शर्माजी का यह प्रयत्न सर्वथा प्रशसनीय है। शर्माजी का इस विषय पर वर्षों का केवल अध्ययन ही नहीं है उन्होंने स्वयं साधना करके इसकी सत्यता का अनुभव किया है। इसीसे यह ग्रन्थ इतना सुन्दर और महत्वपूर्ण हो सका है। इसमें १६ प्रकाश हैं जिनके द्वारा स्वरोदय विज्ञान सम्बन्धी प्राय सभी विषयों पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। स्वरविज्ञान के प्रेमी पुरुषों के लिए तो यह पुस्तक बडे काम की है। साधारणतया जनता भी इसे पढ कर और इसमें उल्लिखित साधनों से लाभ उठा कर शर्माजी का उपकार मानेगी। आशा है शर्माजी की सतत अनुसंधान परायणता इस पुस्तक के आगामी सस्करण को और भी सुन्दर तथ्यों से पूर्ण बना कर जनता को विशेष लाभ पहुँचावेगी।

श्री दुर्गाप्रसादजी भी लिखते हैं कि 'तेज स्वरोदय विज्ञान' पढ़ने व मनन की

जैसा कि सुना था वैसा ही फल प्राप्त हुआ और मन-चाहे कार्यों में निन्यानवें प्रतिशत सफलता मिली।

सुजानगढ़
१० फरवरी १९५०

प्रस्तुत पुस्तक स्वरविज्ञान के सुप्रसिद्ध वेत्ता और साधक पण्डित रामेश्वरलालजी शर्मा की माँ भारती के मन्दिर में अनुपम एवं अद्वितीय भेंट है। स्वरविज्ञान भारतीय ज्ञान साधना का एक विशेष अंग रहा है। पर अपनी इस मौलिक विद्या के प्रति इस देश में जितना अज्ञान है, वह विस्मयकारी एवं साथ ही साथ खेदजनक भी है। स्वरविज्ञान का लक्ष्य केवल आत्मानन्द प्राप्त करना ही नहीं है, बल्कि भौतिक जीवन को भी स्वस्थ एवं संयमित गति देना है। स्वरविज्ञान बुद्धि और हृदय दोनों की समन्वयात्मक देन है। इस अमृतमयी भारतीय विद्या को सर्व साधारण के लिये सुलभ करने का श्री शर्मा जी का यह प्रयत्न अत्यन्त प्रशंसनीय तथा श्लाघ्य है। निपुण विद्वान् लेखक ने जिस सरल और बोधगम्य शैली में इस गहन विषय का विवेचन किया है, वह सहज और हृदयग्राही है। भौतिकता के तिमिर युग में तेज स्वरोदय विज्ञान प्रकाश का प्रतिनिधित्व करने वाली हिरण्य रश्मि के सदृश है। राष्ट्रभाषा हिन्दी में स्वरविज्ञान का साहित्य नहीं के बराबर है। पण्डित रामेश्वरलालजी का इस विषय में केवल चिन्तन और अध्ययन ही नहीं, साधना भी है। पुस्तक में उनके द्वारा अनुभूत प्रयोगों के समावेश ने तो पाठक के लिये सामग्री को और भी उपादेय बना दिया है। जहां पाश्चात्य देशों के आसुरी अन्वेषणों के प्रति हमारे राजनीतिज्ञों को विशेष जिज्ञासा है—वहीं अपनी ही संस्कृति द्वारा प्रदत्त दैनिक क्रियाओं की ओर से वे सर्वथा उदासीन और अनभिज्ञ से हैं। उदाहरण के लिये सन्ततिनिरोध की घातक और कृत्रिम प्रक्रियाओं की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन देने की अपेक्षा इस विषम

समस्या का समाधान अगर स्वरविज्ञान की प्रणाली के प्रति जन साधारण की रुचि जागृत कर किया जाता तो न केवल इस समस्या का ही सहज हल प्राप्त होता, बल्कि राष्ट्र के मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य की भी अतुल वृद्धि होती। कितना अच्छा हो यदि अब भी सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न भारतीय जनतन्त्र के अधिनायक अपनी राष्ट्रीय समस्याओं को अपने ही सांस्कृतिक दृष्टिकोण से सुलझाने का प्रयत्न करें।

रतन निवास
फाल्गुन कृष्णा सप्तमी
वि. स २००६

कन्हैयालाल सेठिया

High Court,
Bikaner.
January 3, 1949.

Pt. Rameshwarlal sharma, B. A., LL. B., who is Tehsildar in Raj Bikaner has also studied astrology. His study of astrology is scientific and he predicts giving grounds for the same. There was a prediction from a big authority that the last part of the last year of mine which ended in the first week of November 1949 was dangerous for my life and Pandit ji after calculation held a contrary opinion. I am glad to certify that his prediction proved true. He has also

written one book named तेज स्वरोदय विज्ञान. It is an interesting book in which the subject has been dealt with so plainly that a layman can also appreciate its importance.

I wish him all success.

Sd/Bisheshwar nath
Chief Justice
High Cort, Bikaner

Shri Radha Krishna Chaturvedi, Inspector General of Customs and Excise, Bikaner.

15th April, 1949.

.. is a very learned Astrologer, Palmist and *Swar Vignan-vetta* ..has wonderful insight in this science. His Predictions have come out to be absolutely true in several cases relating to me

---

Shri Champa Lall Kochar, Commissioner & District Magistrate, Sadar Division, Bikaner State.

16th January, 1948

...on several occasions found predictions of Pt. Rameshwar Lal . absolutely correct. His

prediction during 1947 that there would be no famine when all signs pointed towards the same, turned out quite correct and gave all who came across his report a welcome surprise..

— — —

Shri K. M. Radha Krishnan, Asstt. Accounts Officer. Jaipur.

"....His readings have been wonderful.... he is a perfect master in these subjects..."

———

Shri Jaswant Singh, Senior Superintendent of Police, Bikaner. 18th March, 1948.

"..... told me all facts which occasioned in my life ond were true.... ."

———

Shri Jagdish Prasad Sharma B.Sc.,LL.B.,M.A R.P. Superintendent of Police, Jaipur.

I take pleasure in certifying that Shri Rameshwar Lall. B.A.,LL.B., has got a good grasp of the knowledge of Palmistry and astrology both. His foretellings which came out to be true from time to time have led me to belive in this Science.

———

Shri Gurudas Singh, Dy. Locust Entomologist, Govt. of India Bikaner.

Certified that Rameshwarlal Sharma, Tehsildar, read my hand and told me almost all what happened in my past life. He also told me about the future which is still to be seen. I can say that he has good knowledge of this science by which he has impressed me very much.

Shri Gurudas Udasi, General Secretary, All India Refugee Association, Branch Bikaner.

5th February, 1949.

" He goes deep into the mystery of human luck and relates the things as if he was present whenever these happened . "

Shri Rameshwar Lal Sharma, Tahsildar Suratgarh, gave me cetain prediction about my life which came to be true word by word. I wish sincerely to congratulate him in his having such a splendid mastery over the knowledge of Palmitry.

Sd/-Parmanand B. A.
Assistant Engineer
Northern Railway
Hanumangarh

Shri Abdul Mazid Nizami, Advocate, Bikaner.

18th March, 1950.

"—In more than 90% of his predictions, his observations were found correct. The most important of his foretelling was about the breakage of my service which he made in 1942. This came to be true in 1945..."

श्री ब्रह्मदत्त, श्री ओम् भवन, लोधियन रोड, जयपुर, असिस्टेंट सेक्रेटरी, राजस्व विभाग, राजस्थान गवर्नमेन्ट—

जनवरी २०, १९५१.

"मैं हस्तरेखा सम्बन्धी बातों में विश्वास कम रखता हूं किन्तु जब मैं श्री रामेश्वरलालजी शर्मा के सम्पर्क में आया मुझे नवीनता प्राप्त हुई तथा मैंने इनकी बताई हुई बातों में सफलता पाई..."

Casually I came in to contact with Palmist Pandit Rameshwar Lall Sharma, Ratangarh, and I am glad to note down that whatever he told m[illegible]y past and future was much accurate.

He is a well read Pandit of deep study in Palmistry and astrology.

Sd/-M. K. Tembhonikor
20-7-48.

Address:-

M. K. Tembhonikor M. A. 115 Naya Bazar,
(i) Maharastra Samaj,
Old Delhi.
(ii) 615 Sadashiv peth.
POONA 2.

Shubh Raj Laroiya B.A.
Treasury Officer, Churu.

D/-4th January '52

".. foretellings regarding my future were found absolutely correct . .. great knowledge of astronomy and astrology and his book, 'Tej Swarodya Vigyan' is very useful book"

I wish him success in life.

Shri Shrikishan I.I. Railway
29-6-1951

" · ···Everything occurred on the correct date which was foretold by you regarding my future ·····"

यह लिखते हुए मुझे बड़ी प्रसन्नता होती है कि श्री रामेश्वरलालजी, B.A., LL. B., लेखक "तेज स्वरोदय विज्ञान" केवल उच्च श्रेणी के विद्वान ही नहीं है परन्तु एक उच्च कोटि के भविष्यवक्ता व दैवज्ञ भी हैं। आपने सन् १९४८ में जबकि मैं राजगढ में मुन्सिफ एण्ड मजिस्ट्रेट फर्स्ट क्लास था मेरे लिये भविष्यवाणी की थी कि आपको कुछ दिनों बाद मुन्सिफ से तहसीलदार बनना पड़ेगा। मुझे बड़ा आश्चर्य हुवा और मैंने हिन्दुस्तान के कई प्रसिद्ध ज्योतिषियों से भी इस विषय में विचार विमर्श किया था परन्तु इस प्रकार स्पष्ट कोई भी नहीं बतला सके। मैं पण्डितजी की हार्दिक प्रशंसा करता हूँ और ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि वे इस विज्ञान में उत्तरोत्तर सफल होकर उन्नति की ओर अग्रसर हों।

सूर्यकरण शर्मा, बी० ए०, एल एल बी०

D. A. C., Bikaner.

२५-११-५३

I met Pt. Rameshwar Lall Sharma in the train who saw my hand and told me things most of which are true. I have been pleased to meet him.

Moghulpore
Lahore

Sd. Surendra Nath
16-3-50
8 Park View.
New Delhi.

Dated 29-1-1948

It is great pleasure to me to note here the accuracy of the events foretold by you while at Bikaner. Not a single item was left unprovided. I wish that every interested individual should approach such correct man of intelligence.

I wish further progress in the Science of Palmistry.

Yours Sincerely
Tipnis
R. O- CHURU.

Shri V. D. Garg, M.B.B,S. C.A.S. Class II,
P. B. M. Hospital, Bikaner.

13-10-55

"... ...Your predictions regarding my transfer and other incidents are absolutely correct date-wise ....".

-- o.--

श्री मंगल ग्रन्थमाला का चतुर्थ पुष्प (४)

ज र रोदय विज्ञान

लेखक—

पं० रामेश्वरलाल जामदग्नेयः

बी. ए., एल एल. बी.,

तहसीलदार

द्वितीय संस्करण
२०००

सं० २०१२ वि०

मूल्य
५) रु०)

प्रकाशक—

श्री मङ्गल साहित्य कुटीर

रतनगढ (बीकानेर)

पुस्तक मिलने के अन्य पते—

(१) श्री रामेश्वरलाल जामदग्नेयः

रानी बाजार, बीकानेर।

(२) श्री फाल्गुन गोस्वामी,

गोस्वामी चौक, बीकानेर।

मुद्रक—

भारतीय मुद्रण मन्दिर, बीकानेर

समर्पण

गोलोकवासी श्रद्धेय पूज्य पिताजी
श्री पं० तेजारामजी की
पुण्य स्मृति में,
जिनकी अज्ञात प्रेरणाओं से मैं अपने
जीवन में यह लाभ उठा सका,
सादर साञ्जलि समर्पित

— रामेश्वरलाल जामदग्नेयः

तेज स्वरोदय विज्ञान।

सहायक ग्रन्थावलि

१. ऋग्वेद।

२. अथर्ववेद।

३ ऐतरेयारण्यक।

४. शतपथ ब्राह्मण।

५. कौशीतकि ब्राह्मणोपनिषद।

६. शिव स्वरोदय (भाषा टीका) अनुवादक बेरी निवासी पं० किशनलाल द्वारका प्रसाद, बम्बई भूषण छापाखाना, मथुरा।

७. ज्ञान स्वरोदय, श्री चरणदास कृत, आदर्श हिन्दू पुस्तकालय, मथुरा,

८. स्वरोदय सार, ,, ,, ,,

९. स्वर ज्ञान प्रवेशिका, प्रकाशक श्री गुलाबचन्द वैद्य, श्री ऋषिमण्डल कार्यालय, अमरावती, (बरार)

१०. स्वरोदय से दिव्यज्ञान, श्री नारायण प्रसाद तिवारी, उज्ज्वल अखण्ड ज्योति कार्यालय, मथुरा।

अनूप संस्कृत पुस्तकालय, बीकानेर की अप्रकाशित हस्तलिखित स्वरज्ञान सम्बन्धी पुस्तकें (उनकी पंजीयत क्रमसंख्या के साथ–)

११. पवन स्वरोदय—	४६७४	१२. पच स्वरनिर्णय	४७३३
१३. राजविजय स्वरोदय	४८६४	१४. स्वर ग्रन्थ	५१४३
१५. स्वरतत्व चमत्कार	६१४४	१६. स्वर फल	५१४५

१७. स्वर शास्त्र मुहूर्त्तावली ५१४६

१८. सामुद्रिक, ५१६०

१९. स्वरोदय ५१५२

२०. सामुद्रिक चिन्तामणि ५१५५-५६

२१ स्वरोदय टीका ५१५३

२२. ,, तिराक ५१६८

२३. सूर्यस्वर विचार ५१३८

२५. ,, विचार ५१७०

२५. स्वरोदय (यामल) ५१४७

२६. ,, सार ५१७१

२७. योगशास्त्रभाषान्तर, श्री हेमचन्द्र कृत पं० मुनि श्री केश विजयजी द्वारा अनूदित, श्री मांगरोल जैन सभा, पायधुनि, बम्बई।

२८ योग समाचार संग्रह, डा० गोविन्द प्रसाद भार्गव, जयपुर।

२९. भक्ति योग सग्रह, प्रकाशक श्री भजनाश्रम, नवद्वीप, मुद्रक, चन्द्रभाल मिश्र, समाचार प्रेस, ८ रामकुमार रक्षित लेन, कलकत्ता।

३०. योगदीपक, लेखक योगानिष्ठ मुनिराज श्री बुद्धिसागर, श्री अध्यात्मज्ञान प्रसारक मण्डल, बम्बई।

३१. सत् ज्ञान चिन्तामणि, लेखक श्री रामलाल, प्रताप प्रेस जोधपुर।

३२ प्रकृति दर्शन, लेखक जी बी मिश्र, नोहर (बीकानेर) स्टेट गवर्नमेन्ट प्रेस।

३३. श्रीमद्भगवद् गीता शांकरभाष्य, हिन्दी अनुवाद सहित अनुवादक श्री हरेकृष्ण दास गोयन्दका, गीता प्रेस, गोरखपुर।

३४ गीता रहस्य अथवा कार्मयोग शास्त्र, लेखक श्री लोकमान्य बालगंगाधर तिलक, हिन्दी अनुवाद श्री माधवराव सप्रे, लक्ष्मीनारायण प्रेस २६४ ठाकुर द्वार, बम्बई।

कल्याण, गीता प्रेस, गोरखपुर—

३५. साधनाङ्क, १९६२

३६ योगाङ्क,

३७. गीता गोरखाङ्क सन् १६३६ ।
३८. ज्ञान योग लेखक श्री स्वामी विवेकानन्द ।
३६ राज योग ,, ,,
४०. घेरण्ड संहिता
४१. गोरक्ष पद्धति
42. The Serpent power, by Arthur Avalonalias Sir John Woodroffe Ex-Judge, High court of Calcutta, Ganeshan & Co, Madras.
43. The Science of Seership by Hodson.
44. The Voice of Silence by M. P. Blavatsky the Theosophical Publishing House, Adyar, Madras.
45 Nature's Finer Forces by Ramprasad.
46. The Mysterious Kundalni by Dr. Rele.
47. The complete works of Swami Ramatirth Published by The Ramatirth Publication League, Lucknow.

तेज स्वरोदय विज्ञान —

लेखकः-पं० रामेश्वरलाल जामदग्नेयः

बी०ए०, एल एल० बी०

सरदारशहर

(बीकानेर-राजस्थान)

लेखक-परिचय

यह युग एक वैज्ञानिक युग है। प्राचीन भारतीय-विज्ञान एवं अर्वाचीन पाश्चात्य-विज्ञान में वस्तुतः यही अन्तर है कि जहां प्राचीन भारतीय विज्ञान भौतिक एवं आध्यात्मिक दोनों विज्ञानों के अन्वेषण और संवर्धन में तत्पर रहता था वहां आज का पाश्चात्य-विज्ञान केवल भौतिक वस्तुओं के विश्लेषण एवं उनके शक्ति-समर्जन में ही अपने कर्त्तव्य की इतिश्री समझ लेता है।

कारण यही है कि प्राचीन पद्धति से आन्तरिक विज्ञान को विकसित करने की न तो आधुनिक मानव में शक्ति है और न उस प्रणाली पर उसकी श्रद्धा है। दूसरे शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि आत्मिक विज्ञान की सिद्धि का साधक प्रत्येक साधारण व्यक्ति नहीं हो सकता। उसके लिये विशेष नियमों के पालन और एक विशेष श्रद्धा की आवश्यकता है। श्री पं० रामेश्वरलालजी बी ए, एल. एल बी., स्वभाव से अपनी छात्रावस्था से ही इस कार्य के लिये एक विशेष लगन के व्यक्ति हैं। जीवन को इस स्तर तक पहुँचाने में इनकी एक अलग भूमिका और कुछ पूर्वजन्म संस्कार हैं, जिन्होंने इन्हें सर्वदा आर्य-संस्कृति के शुभ सन्देशों को दत्तचित्त हो सुनने के लिये जागरूक रक्खा। अपने कॉलेज के जीवन में ही प्राणायाम, वैदिक संस्कृति, राजयोग, हठयोग और स्वरयोग आदि गहन विषयों पर इन्हें भाषण देते हुए मैंने सुना है। प्रस्तुत पुस्तक उन्हीं भाषणों और इनके अद्यावधिपर्यन्त जीवन का नतीजा है।

यद्यपि विषय गम्भीर है, परन्तु गहनातिगहन गह्वर में पड़े हुए प्राचीन स्वर-विज्ञान को अपनी सरल वर्णनशैली, शुद्ध हिन्दी भाषा और अनुभव से सम्पन्न कर

जिस रूप में हमारे सामने रक्खा है, उसे पढकर हम आश्चर्यचकित हुए बिना नहीं रह सकते। हमें यह सुप्राप्यफल आपके गहरे अध्ययन और क्रियात्मक महान् साधनाओं के उपरान्त सहज ही में मिल गया है। अब हमें न तो योग शब्द के श्रवणमात्र से भय है और न इस योग की प्राप्ति के लिये अगम्य हिमालय की पर्वतीय कन्दराओं में जाने की आवश्यकता है।

आपने इस पुस्तक में कृष्ण के कर्मयोग, गोरख के हठयोग और कबीर के रहस्यवाद आदि अन्यान्य स्वर साधना की समस्त प्रतिक्रियाओं से और अन्तस्थ शारीरिक नाडिजाल से हमें पूर्ण रूप से परिचित कराया है। इससे यद्यपि विशेषतया साधनानिरत साधु ससार अधिक लाभ उठा सकेगा, परन्तु यह विज्ञान केवल साधुओं के लिये ही नहीं, इससे प्रत्येक गृहस्थी, यथा-राजा, योद्धा, पापी, गुप्तचर, वैद्य, व्यापारी आदि बहुत कुछ लाभ उठा सकते हैं। यद्यपि आपको इस बात का पूर्ण अन्देशा है कि इससे पापी, दुराचारी और पैसेवाला वर्ग भी श्रमिक या मध्यम-वर्ग से अधिकाधिक लाभ उठावेगा, और समाजनाश में भी वह इस अमोघास्त्र को चला सकता है परन्तु साथ में कुछ ऐसी क्रियायें भी हैं जिन्हें साधे बिना वह जरा भी लाभ न उठा सकेगा। ये ऐसी क्रियायें हैं जिनके साधने पर साधक हठात् अपनी मति को समाजनाश में न लगाकर उसकी उन्नति में ही लगाता है। यह इस विज्ञान की एक सबसे अनूठी बात है।

संक्षेप में यह पुस्तक मानव समाज की प्रत्येक श्रेणी को हर दिशा में बढ़ाने में पूरी सहायता देती है और उन्हें अपने ही अन्दर रहनेवाली शक्तियों से पूरा परिचय कराती है। यदि यही पुस्तक किसी यूरोपीय विद्वान् द्वारा हमारे सामने रखी जाती तो हम उसकी बुद्धिमत्ता और ज्ञानलिप्सा के लिये उसे साधुवाद देते। परन्तु हम भारतवासी अपने ही भाई द्वारा प्रकाश में लाई हुई आर्य संस्कृति की विज्ञानमयी बातों पर ध्यान नहीं देते।

जगत् का यह समस्त खेल केवल प्राणों पर आश्रित है और स्वरविज्ञान इस प्राणगति के सञ्चार का ही एक नामान्तर है। श्रीयुत् रामेश्वरलालजी ने इस विज्ञान की ओर फिर से हमारे ध्यान को आकृष्ट कर प्राणिमात्र का महान् उपकार किया है। यद्यपि आप बीकानेर राज्य के प्रतिसमय अपने कर्त्तव्य में निरत एक उच्च अधिकारी हैं परन्तु फिर भी अपनी लगन और अपने अनुभव के बल पर आपने इस शास्त्र में जिस विशेषता को दिखाया है उसके लिये भारतीय-विज्ञान इनका सदा आभारी रहेगा।

मैं स्वयं स्वरविज्ञान में एक पूर्ण विश्वास रखने वाला व्यक्ति हूँ और यह मेरा निजी अनुभव है कि इस विश्व का समस्त कार्यकलाप एक नियमित स्वर सचार के आधार पर चल रहा है। यह स्वर केवल मनुष्य में ही नहीं, अपितु चेतन एवं अचेतन प्रत्येक पदार्थ की गतिविधि में व्याप्त है।

मेरा विश्वास है कि इस शास्त्र के प्रेमी प्रत्येक भारतीय एवं इतर देशों के विद्वानों में इस पुस्तक की अच्छी प्रतिष्ठा होगी और नवीन सिद्धान्तों के व्यक्ति भी इससे पूरा लाभ उठा सकेंगे। मैं हृदय से इसके पूर्ण प्रचार का पक्षपाती हूँ।

सरस्वती सदन
बीकानेर
२१–८–४८

विद्याधर शास्त्री एम ए., विद्यावाचस्पति,
विद्यारत्न, दर्शनालङ्कार, विद्यार्णव
आदि आदि
संस्कृत प्रोफेसर,
Head of the Sanskrit
Department,
Dungar College, Bikaner

द्वितीय संस्करण की भूमिका

संवत् २००५ में प्रथम संस्करण छपा था। उसकी ५००० प्रतियां समाप्त हो चुकीं। पुस्तक की मांग बहुत समय से चली आ रही है और उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है। अनेक अनिवार्य कार्यों से मैं इस दूसरे संस्करण का कार्य अबसे पूर्व हाथ में नहीं ले सका। परन्तु अब भगवान् की कृपा से यह नया संस्करण पाठकों के समक्ष रखने का सुअवसर प्राप्त हुआ है। इस संस्करण को इस परिवर्द्धित रूप में तैयार करने के लिये पर्याप्त समय तक इस कार्य में संलग्न रहना पड़ा; कारण कि नित्यप्रति की साधना ने नये नये अनुभव प्रदान किये। पुरानी सन्दिग्ध बातों में उचित संशोधन और उन्हें निश्चयात्मक रूप देने का अवसर उपलब्ध हुआ और कुछ नये विषय भी प्रविष्ट किये गये। इस प्रकार इस पुस्तक की काया में परिवर्तन परिवर्द्धन तथा संशोधन पर्याप्त मात्रा में किये गये। आशा है पाठक इसका स्वागत करेंगे। इस कार्य में मुझे श्री पं० फाल्गुनजी गोस्वामी, बीकानेर की पूर्ण सहायता मिली। उनका मैं आभार प्रदर्शन किये बिना नहीं रह सकता। इतिशम्

दीपावली २०१२ —लेखक

विषय-सूची

तृतीय प्रकाश

स्वरोदय का ज्ञान

[२०-२३]

श्वास, प्रश्वास, स्वर तथा उसका उदय, स्वर के विषय में मूल सिद्धान्त व तत्त्व आदि।

चतुर्थ प्रकाश

स्वरों का तिथियों से मेल

[२४-२७]

स्वर चलने के नियम, सूर्यचन्द्र नाड़ी में २॥-२॥ घड़ी तक तिथि क्रम से चलना, त्र्यम्बक शास्त्री खरे का मत, स्वर की गति वारों पर आश्रित नहीं अपितु तिथियों पर आश्रित है, तिथि का स्वर से निकास, स्वर से भविष्य ज्ञान, शासकवर्ग को इसकी आवश्यकता।

पञ्चम प्रकाश

श्वास से स्वर जानने की विधि एवं पंच तत्त्व

[२८-३५]

स्वरों में प्रतिक्षण का ज्ञान आवश्यक क्यों? सूर्य एवं चन्द्र नाड़ी की पहिचान, जीव स्वर के कारण अंगों में भिन्न-भिन्न अनुभव, जीव स्वर की ओर की

आँतड़ियों में शक्ति का मान, नाड़ियों की गति का मार्ग, जीव स्वर की ओर का नसकोरा अन्दर से साफ ज्ञात होना, पञ्चतत्त्व और उनका क्रम, तत्त्वों की गति में पूर्वा पर विचार और तत्त्वोत्पत्ति, तत्त्वों का समय, तत्त्वों के नक्षत्र, स्वरों की राशि. स्वरों के देवता।

षष्ठ प्रकाश

स्वर, तत्त्व, अन्तर तत्त्व व उनके फल

[३६-५२]

स्वरों का आठ प्रकार का ज्ञान, प्रात ध्यान, पञ्च घटी तक प्राण स्थिर करके ध्यान, तत्त्व विभाग, श्वास फैंक कर तत्त्व जानना, कांच के टुकड़े पर श्वास से तत्त्वज्ञान, स्वभाव से तत्त्व जानना, पञ्च रङ्ग गोली से तत्त्वज्ञान, शब्दोच्चारण से तत्त्वों का प्रबल बनना, पृथ्वी तत्त्व, जलतत्त्व, अग्नितत्त्व, वायु तत्त्व, आकाश तत्त्व, तत्त्वों का प्रभाव।

सप्तम प्रकाश

स्वर परिवर्तन विधि और लाभ

[५३-५७]

सोकर स्वर बन्द करना, स्वर बदलने की क्रियाएं, धक्के से बदलते हुए स्वर का फल, सूर्योदय काल के पहले दुग्ध का मूल्य, घी, शहद खाने मे स्वर बदलना।

अष्टम प्रकाश

भिन्न भिन्न स्वरों में भिन्न भिन्न कार्य और मन्त्रबल सिद्धि

[५८–७०]

इडा के कार्य, पिंगला के कार्य, मेरा विशेष अनुभव, स्वर और मन्त्रबल का साम्निध्य, स्वरों में व्यतिक्रम, भोजन, पत्रलेखन, राजनीति वार्ता, शौच आदि, इडा में नये चन्द्र का दर्शन, सूर्य दर्शन, सुषुम्णा नाडी ।

नवम प्रकाश

जय, पराजय, गर्भाधान, भाग्योदय, आग बुझाना वन्ध्या पुत्रोत्पत्ति, संतति निरोध

[७१–८१]

कार्य सिद्धि, सम्मिलन आदि का काम, समर में स्वरों की उपादेयता, गर्भाधान पुत्रोत्पत्ति, गर्भ न रहना, वध्या के पुत्र, गर्भाधान में भिन्न भिन्न तत्त्वों का प्रभाव, गर्भ के विषय में प्रश्न, रोगी सम्बन्धी प्रश्न, भाग्योदय, आग बुझाना, मेरे विशेष अनुभव ।

दशम प्रकाश

नये वर्ष का फल

[८२–८३]

तत्त्व विचार से निष्कर्ष

एकादश प्रकाश

श्वास प्रश्वास से आयु का सम्बन्ध

[८४-८८]

ज्ञान पिपासा शान्त करने की तालिका।

द्वादश प्रकाश

आयु, रोग, एवं आपत्ति का पूर्व ज्ञान तथा उनका निराकरण

[८६-११३]

आयु, नेत्र से आयु ज्ञान, कान मे आयु ज्ञान, दूसरे लक्षणों से आयु का ज्ञान, आपत्ति, रोग परिज्ञान और उनका उपचार, शुभ फल, अशुभफल, रोग और उसका प्रतिकार, स्वरज्ञान से वैद्य को दोप की पहिचान, रोग और उनके प्रतिकार अन्य उपयोगी उपचार, खून साफ करने की विधि, यौवन स्थिरीकरण उपाय, बीमारी की पहिचान, स्वप्नदोप, सिद्धासन, तथा प्राणायम आँख की ज्योति बढाने का योग, दिन में चन्द्र व रात में सूर्य स्वर की आवश्यकता, दीर्घायु।

त्रयोदश प्रकाश

स्वर-सहायता से प्रश्नों का उत्तर

[११४-११६]

प्रश्नोत्तरी, तत्त्वों में विशेष बातें।

अष्टम प्रकाश

नवम प्रकाश

दशम प्रकाश

आमुख

सर्वेषां हृदये समानगतिको व्याप्तौ सदा जीविषु ।
सूर्यश्चन्द्र इतीरितौ समुदये ख्यातौ स्वरौ सस्मृतौ ।
तज्ज्ञानामृतवर्षिणी च विदुषा—मेकागतिर्ज्ञानिनाम् ।
वाणी सा वितनोतु शान्ति—सरणीमत्र प्रयासे मम ॥१॥
पिङ्गलेडासुषुम्णा वै पर—प्रकृतिपूरुषा ।
सोऽहमों तत्त्वमस्येव गृणन्त पान्तु मां सदा ॥२॥

प्राणिमात्र के हृदय में समान रूप से गति वाले, और सब जीवों में सदा व्याप्त, सूर्य तथा चन्द्र सज्ञा वाले, ससार में स्वर तथा स्वरोदय नाम से विख्यात हैं। उनके ज्ञानरूपी अमृत को वर्षाने वाली भगवती सरस्वती, जो विद्वान् तथा ज्ञानी पुरुषों की एक मात्र गति है, मेरे इस प्रयास में शान्ति की शृखला प्रदान करे।

परमात्मा, प्रकृति तथा पुरुष की प्रतीक पिङ्गला, इडा तथा सुषुम्णा मेरी सदा रक्षा करें क्योंकि मैं 'सोऽहम्', 'ओम्' 'तत्त्वमसि' इत्यादि महावाक्यों का जाप करता रहता हूँ।

"सर्वं हीदं प्राणेनावृतम्"

ऐतरेयारण्यक।

इस ससार में मानव कल्याण के लिये ऐसी ऐसा अनेक गुप्त शक्तियां स्वय उसके शरीर में निरूढ हैं कि जिनका वास्तविक ज्ञान प्रत्येक मानव विग्रहधारी

के लिये परमावश्यक है परन्तु यह मानव-मन सांसारिक मोह माया में इतना लिप्त हो जाता है कि वह अपने अन्दर सुरक्षित खज़ाने का उपयोग कभी कर नहीं पाता, और अज्ञानवश इस दुर्लभ मानव शरीर को व्यर्थ ही नष्ट कर देता है।

हमारे भारतीय दर्शन में प्राण विद्या अर्थात स्वर विद्या का विशेष महत्व है। यह स्वर विद्या ज्योतिष की तरह निश्चित फल बतलाने वाली है। इतना ही नहीं, बल्कि इस विद्या के द्वारा केवल भविष्य में शुभाशुभ का ज्ञान मात्र ही नहीं होता अपितु इसमें अशुभ को शुभ में परिवर्तित करने की क्रिया भी बतलाई जाती है। रोगों का निदान एवं चिकित्सा दोनों इस शास्त्र की सहायता से हो सकती हैं। अत यह इष्ट लाभदायिनी विद्या है। इस विद्या का जितना चिन्तन तथा अध्ययन हमारे प्राचीन ऋषिमुनियों ने किया था उतना शायद ही किसी अन्य देश के विद्वानों ने किया होगा। सच तो यह है कि प्राणोपासना की विद्या अर्थात् स्वर विद्या हमारी अपनी सम्पत्ति है। इस विद्या के वास्तविक महत्त्व को समझना, इस शरीर तथा वाह्य-जगत् में उसके सच्चे कार्य तथा व्यापक प्रभाव को परखना, यह सब सिद्धान्त इस भारत भूमि पर ही हमारे पूर्वजों को सात्विक बुद्धि तथा उर्वर मस्तिष्क के कारण ही प्राचीन काल में उत्पन्न हुए थे तथा अब भी हम में किसी न किसी रूप में दृष्टिगोचर होते हैं। यह विद्या कब से चली? यह कहना बिल्कुल असम्भव है, परन्तु जब हमारे साहित्य तथा धर्म का प्रथम प्रभात हुआ तभी से इस विद्या का उदय हुआ है, यह हम बिना रोकटोक कह सकते हैं, क्योंकि हमारा वैदिक संहिताओं में विशेषत. ऋक् तथा अथर्ववेद की संहिताओं में इस विद्या का उल्लेख सबसे पहले मिलता है। जैसा कि—

अपश्य गोपामनिपद्यमान मा च परा च पथिभिश्चरन्तम् ।
स सध्रीची स विषूचीर्वसान, आवरीवर्ति भुवनेष्वन्त. ॥

ऋ० वे० १।१६४।३१, १०।१७७।३

इस मन्त्र के द्रष्टा दीर्घतमा ऋषि कह रहे हैं कि मैंने प्राण को देखा है—साक्षात्कार किया है। यह प्राण सब इन्द्रियों का गोपा (रक्षक) है। यह कभी नष्ट नहीं होने वाला है। यह भिन्न भिन्न मार्गों अर्थात् नाड़ियों के द्वारा आता और जाता है। मुख तथा नासिका के द्वारा क्षण क्षण में इस शरीर में आता है, तथा फिर बाहर चला जाता है। यह प्राण शरीर में—अध्यात्म रूप में—वायु के रूप में है, पर अधिदैव रूप में सूर्य है। इसी प्रकार ऐतरेयारण्यक में भी प्राण शक्ति की श्रेष्ठता का प्रतिपादन किया है:—

"सोयमाकाश प्राणेन बृहत्या विष्टब्ध', तद्यथायमाकाश' प्राणेन बृहत्या विष्टब्ध एव सर्वाणि भूतानि आपिपीलिकाभ्य प्राणेन बृहत्या विष्टब्धानीत्येव विद्यात्"।

(२ । १ । ६)

'अर्थात्—प्राण इस विश्व का धारक है प्राण की ही शक्ति से जैसे यह आकाश अपने स्थान पर स्थित है उसी प्रकार सबसे बड़े प्राणी से लेकर चींटी तक समस्त जीव इस प्राण के द्वारा ही विधृत है।"

हमारे पूर्वज प्राचीन ऋषि महर्षियों की प्राण विद्या विषयक इस परम्परा के टूट जाने के बाद इस दिशा की ओर बहुत ही कम सज्जनों ने लेखनी उठाई है। क्योंकि आत्मानुभव की कमी और योग्य पात्र के अभाव के कारण वे इस विज्ञान को न तो जन रुचि कर बना सके हैं और न इसका प्रसारण कर सके हैं। योगी लोग तो सच्चे पात्रों के अभाव के कारण सदा ही हम सांसारिक जनों से दूर-से रहे हैं। इस प्रकार उनके वर्षों के कष्ट साध्य फलों के उपभोग से हम सर्वथा वञ्चित रहते आये हैं। आज मैं इस अज्ञानान्धकारावृत मार्ग पर स्वानुभवरूपी बाल सूर्य की लघु किरणों का प्रकाश डालता हुआ योगीजनोपलब्ध सामग्री के सहारे स्वरोदय विज्ञानरूपी महासागर को पार करने की धृष्टता कर रहा हूँ।

यद्यपि इस विज्ञान द्वारा जहाँ मानव हित होता है वहां अज्ञानी एवं पाखण्डी-

जनों के स्वरज्ञानी होने का दावा करने के कारण मूर्ख जनता गहनगह्वर में पटक दी जाती है। इससे इस विज्ञान को महान् आघात पहुँचता है जिसके कारण आज इस पर से शनैः शनैः विश्वास उठता जा रहा है। परन्तु इस विषय के पारगत विद्वानों और स्वय के कई वर्षों के अनुभव के आधार पर मैं दृढता पूर्वक यह कह सकता हूँ कि इस विज्ञान पर अच्छी तरह विश्वास कर चलने वालों को हमेशा कार्य सिद्धि ही हुई है। क्यों न हो, यदि यह सर्व सिद्धिदायक व सर्व श्रेष्ठ विज्ञान नहीं होगा तो संसार में दूसरा और विज्ञान सर्वश्रेष्ठ होगा ही कौन ? क्योंकि इसका मूल सर्वश्रेष्ठ वस्तु प्राण * है। इस पुस्तक में आचार्यों और मेरे स्वय का अनुभवगम्य सकलन है। इसकी सहायता से पाठक अपने आप पहले अनुभव करें और बाद

* सत्पथ ब्राह्मण में कहा है:—

प्राणो हि प्रजापति (४ । ५ । ५ । १३)

प्राण उ वै प्रजापति (८ । ४ । १ । ४)

प्राण प्रजापति. (६ । ३ । १ । ६)

'प्राणो ब्रह्म' इति ह स्माह कौषीतकि

कौषीतकि ब्राह्मणोपनिषद् (२ । १)

'प्राणो ब्रह्म' इति ह स्माह पैङ्ग्य (२ । २)

प्राणो वै सुशर्मा सु प्रतिष्ठानः (श० ४ । ४ । १ । १४)

अमृतमु वै प्राणः (श० ९ । १ । २ । ३२)

प्राणोऽस्मि प्रज्ञात्मा । तं मामायुरमृतमित्युपास्वाऽऽयु

प्राणः प्राणो वा आयु. । यावदस्मिञ्छरीरे प्राणो वसति

तावदायु । प्राणेन हि एवास्मिन् लोकेऽमृतत्वमाप्नोति ।

(शांखायन–आरण्यक ५ । २

प्राण एव प्रज्ञात्मा । इद शरीर परिगृह्य उत्थापयति ।

.... यो वै प्राण. सा प्रज्ञा, या वा प्रज्ञा स प्राण.

(शांखायन–आरण्यक ५ । ३)

रेतो वै प्राण ।

में इसकी उपयोगिता का निर्णय करें।

भारतवर्ष का वह परम दुर्भाग्य का दिन था, जब कि अनेकानेक विजातीय आक्रमणों के कारण अक्रान्ताओं से इसका शौर्य वीर्य ही नहीं अपितु इसकी सतत-कल्याण कारिणी विज्ञानमयी विभूतियां भी काल कवलित हो गई। उस अध पतन के समय से हमारी बुद्धि भौतिकवाद की ओर अग्रसर हुई। हमने इहलोक और परलोक हितैषिणी स्वरविज्ञानमयी विद्या की उपेक्षा की, जिससे हम अनुदिन अध पतन की ओर अग्रसर होते गये। हमारी पार्थिव एषणाने हमें इस प्रकार वशीभूत कर लिया था कि हम अपनी पराजय में भी विगत गौरव के सहारे अहम्मन्यता के महानद में निमग्न रहे। उस समय हम भूल गये थे कि हमारा सजग स्वर विज्ञान हमें उसी पद पर आरूढ कर सकता है जिस पर हम रहते आये हैं। यदि स्वर विज्ञान की ओर इतनी उदासीनता न दिखाई गई होती तो हमें आज के इस अशान्त वातावरण में रहने को विवश न होना पड़ता। इस विज्ञान को खोकर हमने अपने व्यक्तित्व को खो दिया जिसके दण्ड स्वरूप बहुत वर्षों तक हमे परमुखापेक्षी बने रहना पडा है।

आज भारत का सूर्योदय होगया है। भारत आज स्वतन्त्र है, उसका ससार में मान है। अनेकानेक विज्ञानों के साथ इस विज्ञान की ओर भी लोगों का ध्यान आकर्षित हुआ है, परन्तु बहुत कम। इसके कई कारण हैं। इस विज्ञान की ओर लोगों का ध्यान अपेक्षाकृत कम है। जो इसके पारगत हैं वे योग्य पात्रों के अभाव अथवा इससे पाखण्डियों द्वारा अनुचित लाभ उठाने के भय से प्रकाश में कम लाते हैं, क्योंकि उनके हाथ में पड़ जाने से वे इससे अपना ऐसा उल्लू सीधा करते हैं कि इस पर से सदा के लिये विश्वास उठ जाता है। इसका मूल कारण यही हो सकता है कि उन पाखण्डियों का इस विषय का ज्ञान सर्वथा नगण्य रहता है। यदि इस विज्ञान का सांगोपाग विधि से अनुभव सिद्ध करतलस्थित आमलकवत ससार

ज्ञाता गुरु के चरण कमलों के पास बैठ कर ज्ञान प्राप्त किया जाय तो जरूर इस विज्ञान से लाभ पहुँच सकता है।

आज का भारत चाहे सब कुछ खो बैठा है, यदि वह फिर से इस विज्ञान की ओर अभिरुचि रक्खे और तदनुकूल आचरण करे तो अपने भविष्य की अज्ञात बातों का पूर्व ही ज्ञान करके अपनी सब दिशाओं में उन्नति कर सकता है। स्वर विज्ञान का प्राणविज्ञान के साथ अभिन्न सम्बन्ध है। दोनों का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध कहें तो अत्युक्ति न होगी। इस विज्ञान का ज्ञाता अपने वचन का पक्का, सदाचारी, गम्भीर, धीर और वीर होता है। इस प्रकार के विज्ञान के लाभों को देख कर ही पूर्वजों का ध्यान इन विज्ञानों की ओर अधिकाधिक आकर्षित हुआ, और वे वीर हुए। 'उन्होंने वीर भोग्या वसुन्धरा' के सिद्धांत के आधार पर भारत को परतन्त्रता की बेड़ियों में जकड़ने नहीं दिया। भारत परतन्त्र तभी हुआ जब हमारे जैसी पराश्रयाश्रयिणी गुलाम सन्तान पैदा हुई।

इस गहन विषय के ज्ञाताओं पर यदि हम सरसरी तौर पर नजर डालें तो पता चलेगा कि वैदिक काल से छठी शताब्दी तक इसका प्राबल्य रहा फिर लोग इसको भूल गये। बाद में ग्यारहवीं शताब्दी में गुरु गोरखनाथ के शिष्यों और प्रशिष्यों में इसका प्रचलन रहा। तदनन्तर इस विद्या का सर्वथा लोप सा होगया और हम भी विजातियों के सम्पर्क में आने के कारण उनकी बातों से अधिक प्रभावित हुए, व अपने विज्ञान जगत से मुँह फेरसा लिया। इसी कारण जब कबीर चिरकाल विच्छिन्न इस विज्ञान के स्वानुभवरूपी टिमटिमाते दीपक को हाथ में लेकर अपने ज्ञानपिटारे से अपनी अटपटी लगने वाली वाणी में 'स्वर,' 'योग' 'कुण्डलिनी', 'इडा', 'पिंगला', 'सुषुम्णा', आदि को निकाल कर इनका रहस्य बताने लगे तो हम चौंक गये और उनकी बातों पर नगण्य सा ध्यान दिया। और उनके जीवन भर

के निष्कर्ष को हंसी मे उड़ा दिया या समझने की आज तक कोशिश न की। समय ने उस विज्ञान को अव्यवहार्य बतलाया, परन्तु यह हमारी भूल थी।

आज भी समय रहते यदि हम इस विज्ञान की ओर ध्यान दें और उचित मात्रा में स्वर विज्ञान और साथ में ही प्राण विज्ञान इन दोनों का अध्ययन मनन और अनुसरण करें तो ससार में रहते हुए भी सांसारिक विपत्तियों के आघात को सहर्ष सहन करते हुए दीर्घजीवी बन सकेंगे।

आज का मानव अपने आप आपत्तियों का जाल गूँथता है और इसका दोष ईश्वर या भाग्य पर थोपता है। आज भारत के नर नारी बहु सततिजन्य अपनी गरीबी व अन्य आपत्तियों के प्रतिकार में अक्षम होकर दुःखी हैं, तो पाश्चात्य जगत के मानव बहु-साधनता समुपलब्ध होने पर भी सामाजिक सुखाभाव के कारण और भी दुःखी हैं। मानव का ज्ञान सीमित है, वह अपने मर्यादित ज्ञान से सुख दुःख का अनुभव करता है। अज्ञान से दुःखों की उत्पत्ति और ज्ञान से उनका विनाश होता है। प्रस्तुत पुस्तक के लिखने का उद्देश्य दुःख विनाश और सुख का लाभ है। अर्थात् ज्ञान प्राप्ति ही इसका प्रधान लक्ष्य है। अज्ञान के कारण मानव मानव का शत्रु हो रहा है। वह अपने सहज ज्ञान से हाथ धो बैठा है। महामारियाँ अकाल-मृत्यु और दैविकताप आदि का सामना करते करते अपनी हिम्मत हार बैठा है। इतर स्त्रीवर्ग भी तनक्षीण मनमलीन होकर मानव जीवन का सच्चा सदुपयोग नहीं कर पाता। इन सब का मूल कारण यदि किसी को कहा जाय तो स्वर विज्ञान के प्रति हमारी उपेक्षामयी वृत्ति है। यदि हम इसके आधार पर सांसारिक जीवन की रूप रेखा बना कर चलें तो जीवन का हम एक सर्वश्रेष्ठ उपयोग कर सकेंगे। इसके द्वारा मनुष्य अपना भाग्योदय, कर सकता है असामायिक मृत्यु, रोग और आपत्ति का निवारण, अपनी आयु का ज्ञान, नियमित श्वास प्रश्वास से आयु वृद्धि, संध्या के

पुत्रोत्पत्ति कर सकता है तथा तत्त्वज्ञान प्राप्त कर मानव शरीर में प्रतिदिन पैदा होने वाले पीयूष को शरीरस्थ सर्पिणी के मुख में न डाल कर अपने शरीर में रमा कर अमर योगी भी बन सकता है।

इसी प्रकार स्वर विज्ञान के आधार पर हम यह भली भांति जान सकते हैं कि आज कौनसी तिथि है? क्योंकि स्वरानुसार ही तिथियां निर्मित हुई हैं। केवल मात्र स्वर योगी ही अन्तिम निर्णय दे सकता है कि कौनसी तिथि को वर्षारंभ माना जाय प्राय ज्योतिषियों में अमावस्या तथा पूर्णिमा की क्षय-वृद्धि के विषय में मत भेद हो जाता है। यही तिथियां मास के प्रारंभ तथा अन्त की सूचक है अतः इनका विशेष महत्व है। स्वर विज्ञान ही इसका अचूक निर्धारण करता है स्वर ज्ञान के द्वारा दैनिक, साप्ताहिक, मासिक और वार्षिक फल की जांच की जा सकती है। तिथियों के क्षय और वृद्धि का निर्णय इसी स्वर विज्ञान की सहायता से सरलता के साथ किया जा सकता है। इस बात का निश्चय मैंने स्वयम् के अनुभव से भी किया है।

इस गहनातिगहन विषय पर लेखनी उठाने के मेरे साहस का कारण अनुभवी योगियों का सम्पर्क और आत्मानुभव है। कई वर्षों के अनुभव के आधार पर मैं यह दावे के साथ कह सकता हूँ कि मैंने अनेक विपत्तियों पर सहज में विजय पाई है, और तबसे एक ऐसा आत्मबल पैदा हो गया है कि मैं इस विषय से अपने भाइयों को परिचित कराऊं। स्वर विज्ञान में आग बुझाने की विधि का वर्णन है, इसका वास्तविक अनुभव अभी तक मैं 'नहीं' कर पाया हूँ, परन्तु अवसर आने पर ऐसा किया जा सकता है। इस ग्रन्थ के संपादन में मैं शिव स्वरोदय, कल्याण के साधनांक के 'स्वरोदय साधन' शीर्षक लेख के लेखक श्री तड़ितकान्त झा प्रभृति विद्वानों का परम आभारी हूँ, जिनके लेख और सामग्री से मुझे आत्मप्रेरणा मिली और बाद में अपने अनुभव की आधारशिला पर खड़ा होकर यह ग्रन्थ सम्पादन कर

रहा हूँ। सज्जन पाठक इस विषय पर निष्पक्ष भाव से मनन करेंगे और इस पुस्तक में जितनी त्रुटिया होंगी उन्हें केवल क्षमा ही नहीं करेंगे किन्तु उनपर प्रकाश डाल, कर लेखक को कृतार्थ करेंगे।

मैंने अपने अनुभवों को प्रधानता दी है। इस पुस्तक की सत्यता को अनुभव रूपी कसौटी पर कभी भी कसकर परखा जा सकता है। जनता जनार्दन को इस लघु प्रयास से यदि लाभ पहुँचा तो मैं अपने प्रयत्न क। सफल मानकर, भविष्य में और भी अधिक सेवा करने का प्रयास करूगा। प्रस्तुत विषय आज भी साधारण जनता को एक अनोखासा प्रतीत हो सकता है, क्योंकि अभी भौतिकवाद का जमाना है। आध्यात्मिक विषयों को अश्रद्धा और शका की दृष्टि से देखना स्वभाव सा हो गया है। इस पुस्तक को जनता, जनार्दन के समक्ष रखने में मेरा उद्देश्य केवल लोक-हित है। सम्भव है लोग इसकी अवज्ञा करें। कवि भवभूति ने कहा है—

ये नाम केचिदिह न प्रथयन्त्यवज्ञां,
जानन्ति ते किमपि तान्प्रति नैष यत्नः।
उत्पत्स्यते ऽस्ति मम कोऽपि समानधर्मा,
कालोह्ययं निरवधि र्विपुला च पृथ्वी।

अर्थात् हो सक्ता है लोक मेरे इस काव्य की अवज्ञा करें, परन्तु वे चाहें तो ऐसा करते रहें, मेरा यह प्रयत्न उनके लिये नहीं है। संभव है मेरा ही समानधर्मा अर्थात् इसकी कद्र करने वाला विद्यमान हो। या न भी हो तो भविष्य में हो सकता है, क्योंकि समय का विस्तार सीमा रहित है तथा यह संसार बहुत विस्तृत है।

मैं भी आशा करता हूँ कि मेरे इन अनुभवों तथा परिश्रम का लाभ उठाने

जीवन श्वास प्रश्वास पर निर्भर है और स्वर विज्ञान इसी श्वास प्रश्वास के सम्यक् ज्ञान को कहते हैं।

स्वरोदय क्या है ? 'स्वर' और 'उदय' दो शब्दों के योग से शब्द 'स्वरोदय' बनता है। 'स्वय राजते या रमते इति स्वर, स्वरस्य उदय स्वरोदय.'। जो स्वयं प्रकाशित होता या चलता है वह स्वर है। इस विज्ञान के अनुसार नासिका के द्वारा श्वास के आवागमन को स्वर कहते हैं। इस प्रकार श्वास की गति का एक नथुने से दूसरे में प्रारम्भ होना उदय कहलाता है। जिस प्रकार सूर्य नित्य तथा सनातन है, किन्तु किसी स्थान विशेष पर उसका प्रकट होना उदय कहलाता है, उसी प्रकार स्वर का मार्ग परिवर्तन उदय माना जाता है।

यह विज्ञान प्राचीन समय में ऋषि महर्षियों को कठिन तपस्या और विशेष अनुभव द्वारा प्राप्त हुआ था। यह प्राण से सम्बन्ध रखने वाला पूर्ण चमत्कार-युक्त विज्ञान है। यत्र तत्र आज भी इसका नाम सुनाई पड़ता है; परन्तु इसका जानकार लाखों में से कोई विरला ही मिलता है, और शायद वह भी इसका पूर्ण ज्ञाता हो, इसमें सन्देह है। सांगोपांग विधि से स्वर विज्ञान वेत्ता शायद ही मिले। इसके कई एक कारण हैं। जो इस विज्ञान का पूर्ण ज्ञाता होता है वह सांसारिक वातावरण से अलग-सा हो जाता है, और सुपात्र शिष्य के अभाव में इस विज्ञान रूपी नग्न कृपाण को किसी कुपात्र शिष्य के हाथों सौंप कर संसार को अज्ञानान्धकार या अन्धविश्वास में पटकना उचित नहीं समझता। जो इस विज्ञान का सच्चा जानकार होगा वह अपनी जीवन भर की इस अमूल्य निधि को व्यर्थ में लुटा कर पाप का भागी कभी नहीं बनेगा, क्योंकि यह विज्ञान किसी अंश में अणुबम से भी अधिक भीषण और भयावह है।

स्वरोदय विज्ञान की विशेषता

इसके ज्ञाता

इसके ज्ञाता को हर प्रकार का ज्ञान, चाहे वह सांसारिक हो या दैवी, हो जाता है। उससे ब्रह्माण्ड की कोई भी बात छिपी नहीं

स्वरोदय विज्ञान से हर प्रकार के सांसारिक व दैविक विज्ञान की प्राप्ति

रह सकती। क्योंकि मनुष्य को इस विज्ञान से अध्यात्म तत्त्व का साक्षात्कार होता है जिससे उसमें अलौकिक दैवी शक्तियों का आविर्भाव हो जाता है।

इस विषय का अपूर्ण ज्ञाता या इस का झूठा ही दम भरने वाला अन्याय पर भी उतर सकता है। अत: प्रत्येक मानव का कर्त्तव्य है कि इस पुस्तक का अध्ययन और मनन मनोयोग पूर्वक करे और किसी को अनुचित लाभ उठाने का अवसर हाथ न आने दे, क्योंकि मेरा यह लघु प्रयास जग-कल्याण के लिए है। मैंने इस स्वरोदय विज्ञान की अमूल्य निधि को कतिपय विशिष्ट योगियों के सम्पर्क और स्वयं के कई

मेरी इच्छा

वर्षों के अनुभव से प्राप्त किया है। मैं इस विषय को अपने तक ही सीमित रखना उचित नहीं समझता। सदा से ही मेरी यह बलवती इच्छा रही है कि हमारे प्राचीन विज्ञानों को फिर से प्रकाश में लाकर उन से भारत का उद्धार किया जाय। कतिपय ग्रन्थों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि इस रहस्य को प्रकट न किया जाय, परन्तु निष्पक्ष नर की न्याय दृष्टि से मेरा कर्तव्य मुझे यही आदेश देता है कि मैं तो अपनी ओर से वर्षों के विलोडन के पश्चात् निकली हुई सामग्री को जनता के हाथों सौंप दूँ। आगे उसकी इच्छा है कि वह चाहे तो इसका सदुपयोग करे या दुरुपयोग। मैं इस मत का अनुयायी हूँ कि किसी विज्ञान को व्यक्ति विशेष की सम्पत्ति न माना जाय। उस विज्ञान-सम्पत्ति को सर्वसाधारण के लिये सुलभ कर दिया जाय, क्योंकि सत्यनिष्ठ आविष्कर्त्ता आविष्कार करते समय जनता के हित का ध्यान रखकर ही तत्पर होता है वह स्वयं नीच प्रवृत्ति

ओर ध्यान न देकर अपनी आत्मा को विशाल बनाये रखता है। इसीलिये आज मैं इस अलभ्य और महत्कष्टसाध्य सामग्री का संकलन कर उसे पाठकों के आगे प्रस्तुत कर रहा हूँ। मेरी इच्छा है कि यह विज्ञान सुपात्र पुरुषों को सुचारु रूप से प्राप्त हो और वे अपने जीवन में इसका लाभ उठावें, तथा संसार को भी लाभान्वित कर सांसारिक और दैवी सुखों में उन्नति करते हुए आत्मोन्नति करें।

'शिव स्वरोदय' में, जो इस विज्ञान पर एक सर्वमान्य मूल ग्रन्थ है, इसके विषय में पर्याप्त रूप से विचार किया गया है। इसमें शिव-पार्वती सम्वाद है।

शिव-पार्वती संवाद

आजकल लोग पचांगों में निष्कारण भैरवभवानी संवाद देते हैं, परन्तु शिव पार्वती सम्वाद ऐसा नहीं है। पार्वती महादेवजी से प्रश्न करती है कि—"हे देवाधिदेव! मेरे लिये सर्व सिद्धि कारक ज्ञान का भाषण करिये, और यह बतलाइये कि यह ब्रह्माण्ड कैसे उत्पन्न हुआ और किस प्रकार यह स्थिर और बाद में लय हो जाता है"। इस का उत्तर शिवजी ने दिया कि—"यह ब्रह्माण्ड तत्त्व से उत्पन्न होता है, उसीमें पालित है, और बाद में उसी में लीन हो जाता है। निर्लेप निराकर सच्चिदानन्द भगवान् से आकाश, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल और जल से पृथ्वी ये पांच तत्त्व पैदा हुए। इन के विस्तार से यह चराचर ब्रह्माण्डोत्पत्ति हुई। इन्हीं से शरीर बना है। इन बातों को केवल मात्र योगी जन जानते हैं।

"इस ज्ञान की जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है। यह सब तत्त्वों का शिरोमणि है, सत्य का निश्चय करानेवाला और नास्तिक जनों में आश्चर्य पैदा करने वाला है। आस्तिकजनों का तो यह आधार है। इसके ज्ञान से प्राणी सर्वज्ञाता

इससे सर्वज्ञान

हो जाता है। इस में सम्पूर्ण वेद शास्त्र हैं। इस में वह उत्तम एवं गुह्यातिगुह्य ज्ञान या विद्या है, जिससे मनुष्य इस संसार में सुखी

होकर परलोक में भी एक अच्छा स्थान बना सकता है। यह सब ग्रन्थों का सार है। यह आत्म स्वरूप है। इस उत्कृष्ट ज्ञान बिना ज्योतिषी स्वामीहीन घर, शास्त्रहीन सुवक्ता और सिर बिना देह जैसा है। अखिल ब्रह्माण्ड के खण्ड पिण्ड शरीर आदि इसीसे रचे गये हैं यह सृष्टि की उत्पत्ति, पालन और संहार करने वाला है। इससे उत्तम गुह्य ज्ञान या धन देखने अथवा सुनने में नहीं आया। इसके बल से शत्रुनाश, लक्ष्मी प्राप्ति, मित्र—समागम, इच्छित—कीर्ति, विवाह, राजदर्शन, भूपति-वश, देव-सिद्धि, इच्छित खाद्य-वस्तु और ठीक समय पर मलमूत्र विसर्जन, आदि होता है। सम्पूर्ण वेदान्त, पुराण, शास्त्र स्मृति आदि सब इसमें गौण हैं। जब तक इस तत्त्व का ज्ञान नहीं हो पाता तब तक नाम रूप आदि मिथ्या भ्रम रहता है, और अज्ञान, मोह भी तब तक ही है। जैसे दीपक कमरे को प्रकाशित करता है वैसे ही यह ज्ञान शरीर को प्रकाशमान अथवा जाज्वल्यमान कर देता है। तिथि, नक्षत्र, वार, ग्रह, देवता, भद्रा, व्यतिपात, वैधृति आदि दोष इसमें नहीं लगते। इसका बल प्राप्त होने पर जीवन में कोई बुरा योग नहीं पड़ता इसकी साधना से प्राणिमात्र को प्रत्येक काम में बिना परिश्रम के फलप्राप्ति होती है। इससे हम पहले ही सुभिक्ष, दुर्भिक्ष, जय, पराजय, शुभाशुभ, शत्रु, मित्र, सुख, दुःख, सिद्धि, असिद्धि आदि सभी बातों का ज्ञान सहज में ही प्राप्त कर सकते हैं। इच्छानुसार प्रत्येक नर नारी मनोवाञ्छित पुत्र या कन्या पैदा कर सकता है। यदि मनुष्य चाहे तो सन्तति-निरोध भी कर सकता है।"

आज भारतवर्ष अपने महामन्त्रों, योगों और सिद्धियों को भूल जाने के कारण ही बहु संतति का शिकार हो रहा है, जिससे हम शक्तिक्षय के साथ साथ अनेक संकटों के शिकार बन रहे हैं। वर्तमान समय में धुरन्धर विद्वान् और देशहितचिन्तक नेता सन्तति निरोध पर गला फाड़ फाड़ कर व्याख्यान दे रहे हैं, परन्तु कोई प्रभाव नहीं पड़ रहा है। इसका

इसका ज्ञान न होने से कमी

सबमें सरल मार्ग यही है कि देश में स्वरज्ञान के अध्ययन का प्रचार पूर्णरूप से किया जाय। निःसन्देह जनसंख्या में आजकल के समान निरर्थक बढ़ाव न होगा, और देश में एक जागरूकता पैदा होगी। इस विज्ञान के ज्ञाता के लिये करोड़ों रसायन व औषधियों का सेवन निरर्थक है, क्योंकि इसके द्वारा वह प्रत्येक व्याधि को आसानी से पछाड़ सकता है। लक्ष्मी उसका चरण चुम्बन करेगी। आग बुझाकर करोड़ों की सम्पत्ति की रक्षा स्वरज्ञानी आसानी से कर सकता है।

ऊपर लिखे अनुसार इस शास्त्र का रहस्य शिव द्वारा पार्वती को समझाया गया, जो सर्व सिद्धि कारक है। इस शिव कथन में अणुमात्र भी सन्देह नहीं है, क्योंकि स्वयं शिव स्वरस्वरूप हैं। स्वरयोग से एक लाभ यह भी है कि इसके अनुसार चलनेवाला पुरुष संयमी हो जाता है। यथा किसी को कोई पापकार्य करना है और उस समय उसका दाहिना स्वर और उचित तत्त्व नहीं चल रहा है, तो वह तुरन्त काम करने से रुक जायेगा। बाद में उचित स्वर आने तक उसकी पापधारणा बदल जायगी।

इस ज्ञान द्वारा मनुष्य भविष्य की प्रत्येक बात समझ सकता है। यह बात आगे चलकर आपको बतलाई जायेगी। अब प्रश्न यह उठता है कि इसमें लाभ क्या होता है? इसका उत्तर संक्षेप में यही है कि स्वरज्ञानी अपना भविष्य सुधार सकता है। यदि मनुष्य भविष्य से अनभिज्ञ रहता है, तो उसे इस संसार में अधिक ठहरने की जरूरत नहीं है। स्वर विज्ञान से दूर रहने वाले का भविष्य सर्वथा अन्धकारमय होता है, ठीक समय पर उस पर आपत्ति आ जाती है, जिसके चंगुल से वह निकल नहीं सकता, यदि वह इस समय विपत्ति से बचने का प्रयत्न करे तो भी अन्त में विपत्ति का शिकार होकर ही रहता है। स्वर-ज्ञानी न तो अधिक शक्ति और धन का अपव्यय

स्वर ज्ञान आवश्यक क्यों?

करता है और न करने देता है। वह तो विपत्ति का पूर्वाभास पाकर उसका निराकरण पहले से ही सोच लेता है। उदाहरण स्वरूप यदि आज भारतवर्ष के हिन्दू अपना स्वर विद्या को न भूल गये होते, तो उन्हें बंगाल और पंजाब के निरीह हिन्दुओं की निर्मम हत्या, गो-वध, स्त्री-अपहरण आदि अमानवीय अत्याचारों को अपनी आँखों से नहीं देखना पड़ता। हम स्वर-ज्ञान रूपी अपनी चक्षु को कभी के फोड़ चुके थे। यह प्रकृति की देन हमेशा हमारे शरीर में विद्यमान है। इससे लाभ न उठावें, यह हमारा ही दोष है। प्रकृति का नियम अटल और सनातन सिद्ध है। इन पर अविश्वास करना अपने जीवित प्राणों के अस्तित्व पर सन्देह करना है यह स्वर या प्राण शिव स्वरूप है, और प्रकृति का यह एक महान् तत्त्व है। इसके प्रमाण की कोई आवश्यकता नहीं, यह स्वतः सिद्ध है। निम्नलिखित कहानी इसके प्रमाण में प्रस्तुत की जाती है।—

एक समय की बात है कि प्राण तथा चक्षु, नासिका आदि सब इन्द्रियों में अपनी अपनी श्रेष्ठता के लिये विवाद खड़ा होगया। नासिका ने कहा— मैं सर्वश्रेष्ठ हूँ। जीभ ने कहा कि— मैं। इसी प्रकार कान, आँख आदि ने भी अपनी अपनी श्रेष्ठता का दावा किया। परन्तु इस अहमहमिका में कोई निर्णय न होने पर वे सब ब्रह्माजी के दरबार में गईं। उन्होंने कहा कि क्रमशः शरीर में से एक एक इन्द्रिय निकल कर देख लें। यदि उसके अभाव में शरीर का काम चलता रहता हो तो उसकी कोई श्रेष्ठता नहीं और यदि शरीर से बाहर निकलने वाली इन्द्रियों के अभाव में शरीर का व्यापार ठप्प हो जाय तो उसी को प्रधान व श्रेष्ठ समझो। क्रमशः सभी इन्द्रियां बाहर निकलीं, परन्तु शरीर का काम चलता रहा अन्त में प्राण जैसे ही अपना स्थान छोड़ने लगा और शरीर पाँच तत्त्वों में मिल कर नष्ट होने लगा

सर्व श्रेष्ठ तत्त्व व उसके अनुसार फल

तब सब इन्द्रियाँ हाथ जोड़ कर प्रार्थना करने लगीं कि– "हे प्राण ! तू ही सब में श्रेष्ठ और सर्वोपरि है। तू हमसे अलग न हो अन्यथा हमारा अस्तित्व ही न रहेगा"। सारांश यह है कि प्राण ही सबमें श्रेष्ठ ठहरा। अत. यह प्रमाणित होता है कि **प्रकृति में प्राण ही सर्व श्रेष्ठ और सार वस्तु है। यदि इससे कोई विज्ञान प्रमाणभूत प्रकट हो तो वह सर्वश्रेष्ठ ही होगा।** यह बात न्याय संगत भी है, क्योंकि जो वस्तु जैसी होगी उससे उत्पन्न वस्तु भी वैसी ही होगी। अत. प्रकृति की उपेक्षा करना अपने आपको धोखा देना है। कई आदमी इस तथ्य पर कम ध्यान देते हैं–जैसे श्रीरामचन्द्रजी भारद्वाज 'हस्त सामुद्रिक' में रेखाओं का वर्णन करते हुए कहते हैं कि—"रेखाओं को देखकर मनुष्य कहा करते हैं कि ये केवल झुर्रियाँ हैं। इनको पढ़ कर किसी के भाग्य के विषय में कुछ निर्णय देना मूर्खता के अतिरिक्त कुछ नहीं है। पर वास्तव में बात ऐसी नहीं है। प्रमाण के लिये इतना कह देना ही पर्याप्त होगा कि प्रकृति का कोई भी काम व्यर्थ नहीं होता। यह एक दूसरी बात है कि हम उसके गुप्त भेदों को न समझ सकें, परन्तु उन्हें नि.सार कहना हमारी अज्ञानता का द्योतक है, अर्थात् प्रकाश को अन्धकार बनाना है। अत यह सर्वथा ठीक है कि प्रकृति का कोई काम व्यर्थ नहीं होता और हाथ की रेखायें भाग्य निर्णय में प्रधान चीज है'। इससे (प्राण से) **यदि कोई सार निकाल कर भविष्य का फल कहे तो उसकी श्रेष्ठता की प्रशंसा करने की जरूरत ही नहीं; क्योंकि यह तो एक स्वयंसिद्ध सिद्धान्त है,** अर्थात् स्वर से निर्गत वस्तु की उपादेयता हमारे जीवन के लिये सर्वाधिक है।

संसार के प्राणियों में बहुत सी बातें एकसी मिलती हैं और वे भी अपने आप

मिलती हैं। अत: यह सिद्ध होता है कि यह एक प्राकृतिक नियम है। उदाहरण स्वरूप चैत्र सुदी प्रतिपदा को सूर्योदय सौ में से निन्यानवें प्राणियों के बायें स्वर में होता है। इससे यह सिद्ध होता है कि ऐसा बांया स्वर आना प्राकृतिक है। यदि इस तथ्य को जान कर भी कोई इस स्वर विज्ञान की महत्ता न माने तो यह उसकी महा मूर्खता है, अथवा उस नादान बच्चे के समान अज्ञानता है जो भविष्य-फल पर ध्यान न रख कर आग में हाथ रख दे। ऐसी अज्ञानता सिवा हठधर्मी के और कुछ नहीं है।

प्राणियों में स्वर की समानता

स्वर से दैनिक, पाक्षिक, मासिक (चन्द्रदर्शन से), वार्षिक फल का पता चलता है। स्वर के अनुसार घटनायें भी घटती हैं। इस विज्ञान द्वारा स्वरज्ञानी करोड़ों वर्षों के भविष्य का फल भी करतलगत कर सकता है। यदि भविष्य में कोई बुराई आ रही हो तो उसका प्रतिकार भी किया जा सकता है। यह विज्ञान हमेशा ही मानव जीवन में सफलता ही सफलता प्रदान करता है। असफलता का नाम भी इस विज्ञान-वेत्ता के पास फटकने नहीं पाता।

दैनिक पाक्षिक आदि फल

स्वर विज्ञान की ओर अग्रसर होने में मुझे प्राकृतिक लाभों ने अधिक आकर्षित किया। इस आकर्षण के कारण ही इस विषय में मुझे अभिरुचि पैदा हुई। एक समय की बात है कि मैं एक परीक्षा में बैठने जा रहा था, उस समय नासिका-स्वर पर जरा ध्यान दिया और उससे कुछ फल निकला। यद्यपि मैं उस समय इस नासिका स्वर विज्ञान को जरा भी नहीं जानता था। बाद में मैं यदि किसी से मिलने जाता तो दाहिने स्वर में जाता तब तो मुझे सफलता मिलती और यदि बायें स्वर में

मेरा इस ओर अग्रसर होना

जाता तो या तो वह व्यक्ति मिलता ही नहीं और यदि मिल भी जाता तो कार्य में सफलता न मिलती। इसका ज्ञान धीरे धीरे मुझे अपने जीवन में हुआ। तब से इस विषय को मैंने अपना विषय बना लिया। तदनन्तर 'शिवस्वरोदय' और महात्माओं के संपर्क से इसका खूब अध्ययन और अपने जीवन पर क्रियात्मक रूप से प्रत्यक्षीकरण किया।

शरीर में नाड़ियों का जाल बिछा हुआ है। उनका शरीर में महत्वपूर्ण स्थान है। इस विज्ञान के साथ भी नाड़ियों का गहरा सम्पर्क है। नाडीभेद, प्राणतत्त्वों का भेद और सुषुम्णा आदि से सम्बन्धित नाड़ियों का ज्ञान वास्तविक मोक्ष प्राप्त करना है। देह में भिन्न भिन्न आकृति की नाड़ियां विस्तारपूर्वक फैली हुई हैं। अत ज्ञानी पुरुष के लिये इस रहस्य को जानना बहुत ही आवश्यक है। नाभि स्थान में स्थित पुञ्ज के ऊपर अङ्कुर-स्वरूप निकली हुई ७२००० नाड़ियां शरीर में व्यवस्थित हैं। नाड़ियों में

नाडी जाल

मूल स्थान व संख्या

कुण्डलिनी शक्ति— जिसके विषय में विस्तारपूर्वक अन्त में वर्णन किया गया है—सर्प के समान सोती हुई स्थित है। उसके ऊपर की ओर १० तथा नीचे की ओर १० नाड़ियां निकली हुई हैं। उनमें दस तो प्रधान हैं और बाकी दस वायु को बहाने वाली हैं, और दो दो तिरछी गई हुई हैं। कुल १४ होती हैं। तिरछी उच्चस्थ नाड़ियां वायु और देह के आश्रित हैं और देह में चक्कर के समान स्थित हैं, इसी कारण प्राणाश्रित हैं। इनमें भी तीन नाड़ियां प्रधान हैं जो इडा, पिंगला और सुषुम्णा नाम से पुकारी जाती हैं। इनके स्वामी क्रमश चन्द्र, सूर्य और अग्नि हैं। 'गोरक्ष पद्धति' वर्णन करती है कि इन तीनों की जड़ मूलाधार चक्र की कर्णिका का त्रिकोण है। वाम भाग में इडा, दक्षिण में पिंगला और मध्य में सुषुम्णा है। ये तीनों

उक्त चक्र को अंकमाल किए हुए हैं। ये अपनी अपनी ओर के नासिका छिद्र से बहती हैं। मध्य में रहने वाली सुषुम्णा नाडी मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्र तक फैली हुई है। दस प्रधान नाडियों में इन तीनों के सिवा गान्धारी, हस्ति-जिह्वा, पूषा, यशस्विनी, अलम्बुषा, कुहू और शंखिनी हैं। कुहू और शंखिनी कन्द से अधोमुख होकर नीचे को गई हैं, और ऊर्ध्वमुख होकर ऊपर को गई हैं। इडा शरीर के वामभाग, पिंगला दक्षिण भाग, सुषुम्णा मध्य भाग, गान्धारी वामनेत्र, हस्ति-जिह्वा दक्षिण नेत्र, पूषा दक्षिण कान, यशस्विनी वामकर्ण, अलम्बुषा मुख, कुहू लिंग और शंखिनी गुदा स्थान में स्थित है। इस प्रकार ये नाडियां शरीर में व्याप्त हैं जिनका समर्थन डा० रेले ने भी किया है।

इडा, पिंगला और सुषुम्णा शरीर के मध्य भाग में अवस्थित हैं। नाडियों के विषय में योगांक पृष्ठ ३९६ पर लेखक श्री प० त्र्यम्बक भास्कर शास्त्री खरे के

भिन्न भिन्न नाडियों के स्थान

मत से अवगत होना ठीक है। आपका कथन है कि वामनेत्र से वामपाद के अंगुष्ठ तक चलने वाली नाड़ी गान्धारी है। इसी प्रकार दक्षिण आंख से दक्षिण पैर के अंगूठे तक चलने वाली नाडी हस्ति-जिह्वा है। सुषुम्णा की दांयी ओर सरस्वती नाडी है, वह जीभ के पास जाकर मिली है। दांयी आंख से पेट तक पूषा नाडी है। पूषा और सरस्वती के बीच में पयस्विनी नाडी है। गान्धारी और सरस्वती के मध्य में शंखिनी है। दाहिने हाथ के अंगूठे से बायें पैर तक यशस्विनी नाडी है। कुहू और यशस्विनी के बीच में वारुणी नाडी है और उसकी व्याप्ति शरीर के निचले भाग में है। कुहू और हस्तिजिह्वा के बीच में विश्वोदरा नाडी है। वह भी वारुणी नाडी के समान शरीर के निम्नभाग में फैली हुई है। सुषुम्णा के मध्य

भाग में वज्रा नाडी है और वज्रा के मध्य में चित्रा नाडी है जिसके मध्य में ब्रह्म नाडी है।

इन दसों नाड़ियों के आश्रित प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनंजय—ये दस वायु–हैं। इनकी स्थिति इस प्रकार है—

वायु के भेद व स्थान

प्राण हृदय, अपान गुदा, समान नाभि, उदान कण्ठमध्य, व्यान सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त है। नाग वायु डकार लेने में, कूर्म वायु आँख खोलने मीचने में, कृकल छींक लेने में, देवदत्त जम्माई (उबासी) लेने में बढ़ता है। धनंजय वायु सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त रहता है और मृत शरीर में भी रहता है, जिसका समर्थन 'गोरक्षपद्धति' भी करती है। इस प्रकार ये जीवरूपी दस वायु सम्पूर्ण नाडियों में भ्रमण करते हैं। देह के बीच में प्रकट रूप प्राण का संचार है। उसको ज्ञानी लोग इडा, पिंगला और सुषुम्णा के नाम से पहचानते हैं। इडा में चन्द्र, पिंगला में सूर्य और सुषुम्णा में शिव स्थित है। यदि हम सांख्य की परिभाषा का अनुसरण कर सृष्टि का मूल कारण पुरुष और प्रकृति या शिवशक्ति मानें तो इनके कार्य को यों व्यक्त कर सकते हैं। बांयी ओर नाडी का प्रवाहकर्त्ता चन्द्रमा, शक्ति रूप से, दाहिनी नाडी का प्रवाह करने वाला सूर्य, शिवरूप से स्थित है।

वायु के कार्य के विषय में कुछ पद्धतियों का भिन्न भिन्न मत है। 'घेरण्ड संहिता' के मत में.—

वायु नाम	स्थान तथा कार्य
१.—कृकल	क्षुधा लाती है।
२.—नाग	चेतना लाती है।

३.—कूर्म निद्रा लाती है।

४.—धनंजय शब्द लाती है।

५.—देवदत्त जमाई लाती है।

६.—प्राण वायु हृदय में रहकर श्वास को बाहर भीतर निकालती है तथा अन्नपानादिका परिपाक करती है।

७.—अपानवायु मूलाधार में रहकर मलमूत्र बाहर निकालने का काम करती है।

८.—समानवायु नाभि में रहकर शरीर को शुद्ध रखने का काम करती है।

९.—उदानवायु कंठ में रहकर शरीर—वृद्धि करती है।

१०.—व्यानवायु सर्वशरीर में लेना, छोड़ना आदि अंग के धर्म कराती है।

'शिवयोग शास्त्र' के मत में.—

१—प्राणवायु मुख, नाक, हृदय, नाभि, कुण्डलिनी के चारों ओर पादांगुष्ठ में सदा रहती है।

२—अपानवायु गुह्य, लिंग, जानु, उदर, पेडू, कटि और नाभि में रहती है।

३—व्यानवायु कान, नेत्र, कंठ, नाक, मुख, कपोल और मणिबन्ध में रहती है।

४—उदानवायु सर्वसन्धियों तथा हाथ पैरों में रहती है।

५—समानवायु उदराग्नि की कला को लेकर सर्वांग में रहती है।

'गोरख—पद्धति' के अनुसार धनंजय वायु मृत्यु के बाद चार घड़ी तक शरीर में रहती है, परन्तु 'घेरण्ड संहिता' का मत है कि यह शरीर को कभी नहीं छोड़ती।

डा. रेले अपनी अंग्रेजी पुस्तक 'मिस्टीरियस कुण्डलिनी' में प्राणवायुओं का स्थान निम्नप्रकारेण बताते हैं —

डाक्टर रेल का प्राणों के स्थानों के विषय में मत

"उदान कण्ठ *(Harynx)* के ऊपर है। प्राण गौण का स्थान दिल के आधार *(Base)* व कण्ठ के बीच के स्थान में है। समान नाभि और हृदय के बीच में है। हमारा जीवन इसी पर निर्भर है। अपान नाभि के स्थान में है। व्यान सारे शरीर में व्याप्त रहती है, और मांस पेशियों के शिथिल और आकुंचन होने के कारण शरीर में जो गति उत्पन्न होती है उस पर शासन करती है और जोड़ों की चाल पर भी शासन करती है। तथा हमारे शरीर को सीधा रखने की क्षमता प्रदान करती है।"

द्वितीय प्रकाश

श्वास-प्रश्वास-गतिज्ञान एवं ओम् शब्द की उपादेयता

इस अध्याय में हम विशेषत श्वास प्रश्वासकी चाल का सम्यक् रूपेण विवेचन करेंगे। इस विज्ञान का आधार हरेक मनुष्य के नथुनों से चलते हुए श्वास-प्रश्वास की गति पर ही निर्भर है। वैसे तो यह बात बड़ी साधारण-सी जान पड़ती है, परन्तु इसकी गति कितनी गहन व रहस्यपूर्ण है, इसका पता उस समय चलता है, जब कोई इसकी सहायता से कार्य सिद्धि कर लेता है। इसकी तात्कालिक शक्ति और सामर्थ्य देखकर कोई भी आश्चर्यान्वित हुए बिना न रहेगा। प्रत्येक मनुष्य की क्रिया, उनसे उत्पन्न सुख-दु ख-द्वन्द्व शारीरिक और मानसिक व्याधि आदि सभी कार्य इससे पूर्ण प्रभावित हैं। इसके द्वारा सुखप्राप्ति और दु खनिवृत्ति की जा सकती है। सारांश यह है कि यह स्वर मानव शरीर रूपी रथ का सचालक एव सूत्रधार है।

स्वरोदय विज्ञान या श्वासोच्छ्वास का ज्ञान

इस विज्ञान का सूर्योदय के साथ गहरा सपर्क है। इसमे हर आदमी चौबीस घण्टे की घटनाओं का संदेश पहले ही ध्यानस्थ कर सकता है। सूक्ष्माति-सूक्ष्म बात का ज्ञान दिन में समय समय पर श्वास-प्रश्वास की चाल से ज्ञात हो सकता है। यदि सूर्योदय के समय स्वर की गति नियम विरुद्ध चल रही हो तो यह प्राण के अशुद्ध होने का

सूर्योदय से इसका विशेष सम्बन्ध

लक्षण है और आगामी विपत्ति के लिये सावधान होकर उसके निराकरण का उपाय उसी समय सोच लेना चाहिये। उस स्वर को उपयुक्त या स्वपक्ष में करने के लिये एक घण्टे तक ॐ मंत्र का जाप अवश्य करना चाहिये। इससे प्राण शुद्ध होकर उसके फलस्वरूप अत्यधिक मन.शक्ति प्राप्त होगी। उस मन शक्ति के बल से ही हम आनेवाले कष्ट से मुक्त हो सकेंगे।

ॐ शब्द की उत्पत्ति तथा उसकी वैज्ञानिकता

ओम् शब्द के विषय में हमारे प्राचीन ग्रन्थों में बहुत विशद विवरण मिलता है और इसकी महिमा के बारे में अनेक ग्रन्थ रत्न भरे पड़े हैं। इसकी उत्पत्ति भी वैज्ञानिक रहस्य से परिपूर्ण है। कहा जाता है कि ईश्वर ने मत्स्यावतार से राक्षस का नाश कर प्रणव के द्वारा संसार को वेदों का दिग्दर्शन कराया। साधारणतया लोग इसका यही अर्थ लेते हैं, परन्तु इसमें कुछ और भी गूढ रहस्य छिपा हुआ है। स्वामी रामतीर्थ ने लिखा है कि शंखस्थित कीड़े से वेदों का पुनरुद्धार किया गया। ईश्वर ने मत्स्यावतार धारण कर उस समुद्र के कीड़े को लक्ष कर मार-डाला। समुद्र की लहरें खाली शंख को किनारे पर ले आईं। शंख को मनुष्य ने प्राप्त किया और बजाया जिससे ॐ शब्द की उत्पत्ति हुई। यह ॐ शब्द ही वेदान्त है जो हमें समुद्र से प्राप्त हुआ है। ज्ञान की यह अन्तिम सीढ़ी है। इसी कारण हिन्दू संसार ॐ शब्द को अपने अनेक अवसरों पर— यथा जन्म, मृत्यु, यज्ञ, पूजा आदि – उच्चारण करता है। वही हिन्दू जनता ॐ जैसे महान् वेदान्त को प्राप्त कर पूर्ण सुखी है। किम्बहुना, हिन्दू संसार पूर्णत ॐ शब्द से ओतप्रोत है। इससे आन्तरिक रहस्यों व उच्चातिउच्च अमूल्य सांसारिक ज्ञान की प्राप्ति होती है। आदमी जब अधिक सुखी होता है तो स्वभावत ही उसके अन्त प्रदेश से ओ ओ की आवाज निकलती रहती है। इसी प्रकार बीमारी या दुःख की अवस्था में भी मानव

हृदय से ॐ ॐ की ध्वनि निकला करती है। हिब्रू, अरबी और अंग्रेजी प्रार्थनायें आमेन् से ही समाप्त होती हैं। ग्रीक भाषा का अन्तिम वर्ण ओमेगा है जो ओम् की प्रधान ध्वनिको लिये हुए है। ये सब ध्वनियां ओम् का ही विकृत रूप हैं। ॐ की सर्व व्यापक-स्थिति के अध्ययन से मनुष्य को परमानन्द मिलता है। यद्यपि ॐ शब्द हिंदू जाति का विज्ञान है, परन्तु यह उस सुन्दर वृक्ष के समान है जिसकी ठण्डी छाया में विश्व का प्रत्येक प्राणी बिना किसी भेदभाव के आश्रय पाकर अपने शरीर को शीतल कर सकता है। इसी प्रकार इस ॐ शब्द से विश्व का प्रत्येक प्राणी अपने को आध्यात्मिक विभूतियों से विभूषित कर सुखी हो सकता है। हम इसे प्रणव कहते हैं, क्योंकि यह प्राण में से ध्वनित होकर निकलता है। तेज श्वास लेने पर यह शब्द 'सोऽहम्'' या ॐ के रूप में शरीर में से हर मानव को ज्ञात होता है। इस प्रकार ओम् शब्द सांसारिक प्राणियों का एक अविच्छिन्न अङ्ग है। यह समस्त संसार को अपने में लपेटे हुए है।

यद्यपि तान्त्रिक, वैष्णव, शैव, जैन, बौद्ध व अन्यान्य हिन्दू-धर्मावलम्बी इसका भिन्न भिन्न अर्थ लगाते हैं, परन्तु वेदान्त के मूल ॐ की–जिसमें "अ उ और म्" का संमिश्रण है–महत्ता को सभी स्वीकार करते हैं। वेदान्त के अनुसार ध्वनि "अ" में सन्निहित सांसारिक पदार्थवाद (*material universe*) का जो जाग्रत अवस्था में है भान होता है, स्वप्नावस्था के सारे अनुभव "उ" द्वारा ही प्रदर्शित होते हैं जो मानसिक या सूक्ष्म लोक, प्रेत व स्वर्ग लोक का सूचक है। "म्" अक्षर गहरी निद्रावस्था और अज्ञात संसार का द्योतक है।

इस प्रकार ॐ शब्द में मानव जाति की तीन अवस्थाओं का भान निहित है। जहां पाश्चात्य दार्शनिक ॐ शब्द के "अ" अक्षर (जाग्रतावस्था) का ही अनुभव

करके सारे अन्वेषण व आविष्कार कर रहे हैं, वहा पौर्वात्य ससार के विद्वान "उ" और "म्" अक्षरों (स्वप्न व निद्रावस्था) के अनुभव से ही अपने अन्वेषण व आविष्कार करते है, जिससे दर्शन शास्त्र पूर्णता को प्राप्त होते हैं। किन्तु ॐ शब्द को प्राप्त करने मे पूण आत्मा ही समर्थ होती है, क्योंकि इन्द्रियज्ञान केवल जाग्रतावस्था तक ही सीमित नहीं है। जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति में वास्तविक आ मा निरन्तर सचार करती रहती है। यही वास्तविक ॐ है।

प्रश्न उठ मक्ता है कि इस मन्त्र के जाप मे इतना आत्मबल कैसे प्राप्त हो जाता है और विरुद्ध स्वर का प्रभाव प्रायः क्यों नष्ट हो जाता है ? इसका प्रधान कारण यह है कि प्रथम तो यह शब्द प्राकृतिक है, और हरेक देश के बच्चे इसी शब्द से मिलते जुलते शब्द-अम्मा, अम्म, अम्, ममी और ओम् आदि-उच्चारण करते हैं। गू गे भी इसका प्रयोग करते हैं। विश्व के प्रत्येक-धर्म और भाषा में इसके तद्वत् शब्द व्यवहार में आते हैं, जैसे आमेन् ...आदि। यह शब्द ही पूर्ण-विज्ञान स्वरूप हैं। इस शब्द के शुद्ध हवा में उच्चारण करने मे श्वास की गति प्राकृतिक रूप में परिणित हो जाती है। यदि इसमें सन्देह हो तो कोई भी शुद्ध हवा में ऐसी क्रिया कर इसकी उपादेयता समझ सकता है। यदि पांच मिनट तक प्लुत स्वर से ॐ ॐ का उच्चारण किया जाय तो अनुभव होगा कि श्वास का व्यायाम हो रहा है, तथा श्वास की उर्ध्वगति हो रही है। फिर कतिपय पलों के बाद पूरा श्वास लेना पड़ता है। इस प्रकार यह प्रमाणित होता है कि सूर्योदय कालीन स्वर प्रकृति के विरुद्ध था और ॐ शब्द के जाप से नियमानुसार काम करने लगा। इस प्रकार यदि श्वास नियमानुसार काम करने लग जाय तो शेष रह ही क्या जाता है। शरीर उचित मात्रा में काम करने लगजाता है। अत. ॐ मन्त्र हमारे मानवधर्म का आदि अक्षर होने के साथ

साथ स्वास्थ्य प्रद एव वैज्ञानिक है, क्योंकि इसके उच्चारण में मानव शरीर की अखिल इन्द्रियां सक्रिय हो जाती हैं। इसके उच्चारण से मुह, कण्ठ और उदर भाग में से अशुद्ध वायु बाहर निकल जाती है। ॐ के अवयव 'अ' में कण्ठ 'उ' से उदर और 'म' में ओष्ठ भाग में सक्रियता आती है। अशुद्ध हवा के बाहर निकलने का मार्ग नासिका है। इस ॐ के स्थान में दूसरा कोई शब्द नहीं रखा जा सकता। इन्हीं सब गुण तथा विशेषताओं के कारण यह ईश्वरस्वरूप एव शक्तिमान् कहा गया है। यह सोऽहं का शुद्ध स्वरूप है, क्योंकि व्यञ्जन उड़ने पर स्वरूप ॐ ही रह जाता है। वेदान्त हजारों वर्षों से इसकी महत्ता बताता आ रहा है, परन्तु आज पाश्चात्य सभ्यता की चकाचौंध में चौंधयायी हुई भारतीय जनता ने अपनी इस अमूल्य मणि को कण्ठ से हटाकर फांसी के समान अन्य आभूषणों को गले लगाकर यदि आत्मघात करने में प्रवृत्ति की तो आश्चर्य ही क्या है? इस मन्त्र के सतत उच्चारण से प्रतिक्षण श्वास प्रश्वास की गति कम होती है। श्वास-प्रश्वास की गति कम होने से आयु का स्वयमेव वर्द्धन होता है। प्रणव जाप से अत्यधिक बल की प्राप्ति और पूर्णरूपेण अभ्युदय होता है

तृतीय अध्याय
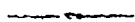
स्वरोदय का ज्ञान

स्वर हमेशा दोनों नथुनों से बराबर नहीं चला करता। प्रकृति व शरीर का यह नियम है कि स्वर कभी एक नथुने से और फिर दूसरे नथुने से चला करता है। पर इसका कारण इनेगिनों को ही ज्ञात होता है। यह क्रमशः अलग अलग नथुनों मे—यदि शरीर में कोई बाधा उपस्थित न हो तो—चला करता है। यह एक इतना अटल ईश्वरीय नियम है कि एक निश्चित समय तक स्वर एक नथुने से चलने के बाद अन्य मे अपने आप चलने लग जाता है। **नासिका से आने जाने की श्वास-प्रश्वास क्रिया को स्वर** कहते है, जैसा ऊपर कह आए हैं। जब एक स्वर अर्थात् शरीर के एक भाग की नाड़ियाँ काम करती हैं तो दूसरे भाग की नाड़ियाँ आराम करती हैं। यदि इसमें ज्यादा कम हो तो गड़बड़ हो जाती है, क्योंकि जिस अंग का स्वर चलता है उस अंग का फेफड़ा अधिक हवा लेता है, अर्थात् चालू स्वर वाले अंग का फेफड़ा विशेष रूप से वायु को खींचता है और रुधिर का प्रवाह भी उस ओर ही विशेष रूप से होता है। उस समय ही प्रवाह द्वारा रुधिर शुद्ध होता है।

श्वास प्रश्वास

ज्ञात हो कि जितनी देर तक एक स्वर अधिक चलता है उतनी देर तक दूसरे का काम रुक जाता है। बिना स्वर वाले फेफड़े में वायु प्रवेश नहीं करता अतः उसे अधिक परिश्रम करना पड़ता है और परिणाम स्वरूप वह खराब हो जाता है,

क्योंकि जिस फेफड़े में वायु का प्रवेश नहीं होता या कम होता है उसमें कोई न कोई विकार अवश्य हो जाता है।

जैसे स्वर का सम्बन्ध फेफड़ों से बतलाया है, वैसे ही हृदय व नाड़ियों से भी जानना, क्योंकि वायु की गति का मार्ग नाड़िया हैं। यही कारण है कि नाड़ियों पर दबाव पड़ने से स्वर बदल जाता है।

उड्डीयानबन्ध से इडा, पिंगला पर दबाव पड़ने से सुषुम्णा स्वर हो जाता है। यह शरीर के मध्य में नाभि से कर्ण पर्यन्त है। आम तौर से यह नाभि पर देखी जाती है। जिस ओर का फेफड़ा खराब होगा उधर वायु भली भांति नहीं जायगी। अनुभव से ज्ञात होगा कि उस ओर का स्वर कमज़ोर हो जायगा।

सुषुम्णा स्वर प्राणायाम व उड्डीयानबन्ध से होता है। दौड़ने व पहाड़ पर चढ़ने से भी यही हाल होता है, क्योंकि उस समय बहुत सी हवा अन्दर जाती है और सब नाड़ियां हवा से भर जाती हैं। अत सुषुम्णा चालू हो जाती है। जब प्राणायाम में सुषुम्णा प्रकट हो तो समझना चाहिये कि स्वर ने सामान्य मार्ग छोड़ दिया है।

दाहिना फेफड़ा बायें से बड़ा है उसमें वायु व रुधिर अधिक रहता है। शरीर के समस्त व्यवहारों में दाहिना अंग अधिक काम आता है। इस कारण इस अंग में खून व चेतनता की अधिकता रहती है। दाहिना स्वर क्रूर तथा बलवान भी है।

जिगर (यकृत्) सूर्यलोक है, अर्थात् अग्नि का कोठा है। जैसे सूर्य अपनी किरणों द्वारा सब पदार्थों के अंशों को खींचता है, वैसे ही यकृत् भोजन के सारे अंश को खींचकर पित्त द्वारा पचाता है और रुधिर में परिणत कर देता है।

चन्द्रमा या चन्द्रलोक का भावार्थ पक्काशय मे है, जिसमें अन्न खाते ही पड़ जाता है और उसी समय उसमें पाचन क्रिया प्रारम्भ हो जाती है। जैसे चन्द्रमा में जल खींचने की शक्ति है वैसे ही पक्काशय में अर्क (भोजन का पतला अंश) और पानी के शोषण की शक्ति है और उसे रुधिर में मिलाने का कार्य भी वही करता है। पक्काशय की बारीक नाडियों द्वारा शोषण करने वाले चन्द्रमा या चन्द्रलोक को अंग्रेजी में कैपीलेरी (Capylaris) और योगशास्त्र में सरस्वती तथा कई लोग नागिनी भी कहते हैं। पक्काशय को जल का भण्डार कहते हैं, क्योंकि इसी के सहारे सारे शरीर में जल फैलता है। जैसे सूर्य-चन्द्रमा संसार में प्रकाश करते हैं वैसे ही यकृत् व पक्काशय सारा खेल शरीर में करते हैं।

जब दोनों फेफड़े थोड़े थोड़े खराब होंगे तो वायु, अग्नि और आकाशतत्त्वों में से किसी की चाल होगी। कुछ दिन बराबर ऐसा होने से मृत्यु हो जायगी। गुजराती (निमोनिया), राजयक्ष्मा आदि बिमारियों में प्राय ऐसा होता है। मृत्यु समय में मनुष्य का प्राणवायु बन्द हो जाने से स्वर नहीं चलते, केवल मुंह से ही श्वास आता जाता है जिससे चार घडी में मृत्यु हो जाती है। निर्बल तत्त्वों (अग्नि, वायु, आकाश) में स्त्री प्रसंग करने से मनुष्य नपुंसक हो जाता है। आदि से अन्त तक एक ही स्वर रहना गर्भ धारण के लिये आवश्यक है। हमारे पूर्वज ऋषिमुनि इस ज्ञान के ज्ञाता होने से इससे सम्पूर्ण लाभ उठाते थे और उनके लिये यह एक साधारण बात थी, परन्तु आज उन्हीं ऋषियों की सन्तानों की यह दशा है कि इसका ज्ञान होना तो दूर रहा, वे इससे परिचित तक नहीं हैं और वे यह भी नहीं जानते कि हम इस पैतृक सम्पत्ति के अधिकारी हैं या नहीं।

पूर्वजों के अनुभव में जो जो रहस्य देखने में आये और जिनको लेकर मैंने स्वयं जो कुछ थोड़ा बहुत अनुभव किया है, उसका मैं विवेचन कर रहा हूं। वैसे तो

स्वर के विषय में मूल सिद्धान्त व तत्व आदि

मूलसिद्धान्त सारी पुस्तकों में एकसे ही मिलते हैं परन्तु कई विषयों पर कुछ पुस्तकों में भिन्न भिन्न मत हैं। अत उन सबका सुचारु रूप से कारण सहित परिणाम निकाल कर पाठकों के सामने रखने का प्रयत्न कर रहा हूँ। इसके चलने के नियम, अवधि, जानने की विधि, चन्द्र सूर्य स्वर में पाच तत्त्व, हर तत्त्वों में बारी बारी से अन्तर, उनके प्रभाव हर प्रकार के भेद, विचार, आधि-भौतिक, आधिदैविक आदि कार्य करने के समय, पुरुष और स्त्री के स्वरों में भेद, सांसारिक सुख दु ख, रोग, प्रश्नोत्तरी आदि पर विचार किया जायगा। इनका अनुशील न करते समय मुझे जो विशेष अनुभव प्राप्त हुआ है उसका भी विशदरूप से आगे वर्णन किया जायगा। साथ में स्वरों में तत्त्व व अन्तर तत्त्व की अवधि एव उसके चलने का क्रम किस प्रकार से होता है, इसका भी पूर्णरूप से विचार किया जायगा।

चतुर्थ कक्षा
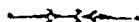
स्वरों का तिथियों के साथ मेल

स्वर साधारणतया चन्द्र और सूर्य नाडी में से ही नियमानुसार चला करता है। कई क्षणों में यह स्वर सुषुम्णा नाडी में से बहने लग जाता है। शुक्ल पक्ष की

स्वर चलने के नियम

१, २, ३, ७, ८, ९, १३, १४, १५ और कृष्ण पक्ष की ४, ५, ६, १०, ११, १२ सूर्योदय से लेकर कुछ समय तक चन्द्र नाडी से स्वर चलता है, जिसको बांया स्वर या चन्द्रस्वर कहते हैं; और यही इडा नाडी है। कृष्ण पक्ष की तिथियों १, २, ३, ७, ८, ९, १३,

सूर्य चन्द्र नाडी में स्वर का २॥-२॥ घडी तक तिथि क्रम से चलना

१४, ३० (अमावस्या) तथा शुक्ल पक्ष की तिथियों ४, ५, ६, १०, ११, १२ में पिंगला नाडी में से सूर्योदय से कुछ समय तक दाहिना स्वर चलता है। प्रत्येक नासिका से २॥-२॥ घड़ी (२॥ घड़ी=१ घण्टा) श्वासोच्छ्वास प्रचलन की अवधि मानीगई है। इस मत पर बाबू ब्रजमोहन लाल वर्मा, बी.ए., विपरीत राय देते हैं और अपनी पुस्तक 'ब्रह्मयोग विद्या' में एक नाडी से श्वास-प्रश्वास की स्थिति ५ घड़ी बतलाते हैं। सम्भव है भूल हो गई हो क्यों कि मेरे अनुभव और इस विज्ञान के अन्य वेत्ताओं के अनुभव ने सिद्ध कर दिया है कि एक नाडी में स्वर २॥ घड़ी ही चलता है। इसके प्रमाण की कोई आवश्यकता नहीं, पाठक स्वयं ही अनुभव करें।

इस विषय के प्रामाणिक ग्रन्थ 'शिव स्वरोदय' के ६३ वें श्लोक में लिखा है कि स्वर २॥, २॥ घड़ी एक दिन में २४ बार बहता है। इस प्रकार बायें दाहिने स्वरों की १२, १२ आवृत्ति होती है। यथा —

सार्ध-द्विघटिके ज्ञेये शुक्ले कृष्णे शशी रवि. ।
वहत्येकदिनेनैव यथा षष्ठि-घटि-क्रमात् ॥

योगाङ्क पृष्ठ ३६१ पर पण्डित त्र्यम्बक भास्कर शास्त्री खरे 'शिव स्वरोदय' का उद्धरण देते हुए लिखते हैं कि प्रत्येक नाडी २४ मिनट चलती है। तदनन्तर

त्र्यम्बक शास्त्री खरे का मत

दूसरी नाड़ी का चलना प्रारम्भ हो जाता है और भोजन के समय चन्द्र नाड़ी और प्रात-काल या सायकाल में ४ घन्टे ४८ मिनट तक आकाश तत्व ही स्थिर रहता है, उस समय को संधिकाल कहते हैं। आकाश तत्त्व के उदय के समय अथवा पृथ्वी तत्त्व के उदय के समय दो तीन मिनट तक सम स्वर रहते हैं। वह सुषुम्णा नाडी है। इस नाडी को ऐसी ही स्थिर करके प्राणायाम किया जावे तो एक अद्वितीय सिद्धि होती है। यही प्राण जप है। नाडी शुद्धि के उपरान्त धौति, वस्ती, नेति, नौलि, त्राटक, कपाल-भाति ये षट् कर्म बतलाये हैं। इस वर्णन में पण्डितजी ने प्रत्येक नाडी का स्थिरी-करण जो २ घन्टे २४ मिनट बताया है वह गलत है, क्योंकि इसका प्रमाण अन्य किसी ग्रन्थ में उपलब्ध नहीं होता व यह मेरे अनुभव के भी विपरीत है। चन्द्रस्वर में भोजन करने का विधान लिखना भी असंगत है, क्योंकि वह भी प्रमाण रहित है। सम्भव है छपने में भूल हो गई हो।

इससे यही सिद्ध होता है कि साधारण रूप से प्रत्येक नथुने से २॥, २॥ घड़ी की आवृत्ति से स्वर चलना चाहिये। कई ग्रन्थकारों ने सूर्योदय के समय स्वरक्रम चलने की बात वारों पर आश्रित मानी है, परन्तु यह मत भी समीचीन नहीं जान

स्वर की गति वारों पर आश्रित नहीं अपितु तिथियों पर आश्रित है।

पड़ता, क्योंकि वारों पर सोम, बुध, गुरु, शुक्र को चन्द्र स्वर और मङ्गल, रवि, शनि को सूर्य स्वर चलेगा; इसका कारण यह है कि चन्द्र स्वर के उपर्युक्त चार वार हैं और सूर्य के तीन। इस प्रकार समान विभाजन न हो सकेगा। इसके विपरीत तिथि-क्रम में सम-सन्तुलन हो जाता है। वारों के अनुसार स्वर-क्रम चलने से फल में गड़बड़ी पड़ जाती है; अर्थात् फल ठीक नहीं मिलता, तथा तिथि-क्रम प्रकृति से शुद्ध सिद्ध होता है, क्योंकि स्वर-क्रम की परीक्षा मैंने सूर्योदय के समय से मिला कर कई पुरुषों पर की, जिससे तिथि-क्रम ठीक प्रमाणित हुआ। मैं अपने अनुभव के आधार पर कह सकता हूँ कि तिथि-क्रम सर्वथा समीचीन और युक्ति संगत है तथा वार क्रम बिलकुल अनुपयुक्त ठहरता है।

तिथि और स्वर का घनिष्ठ संपर्क होना अपनी एक विशेषता रखता है और मैं भी इस पक्ष का अनुयायी हूँ कि ऋषि महर्षिगण सूर्योदय के साथ साथ अपने

तिथि का स्वर से निकास

अनुभव द्वारा उस दिन की तिथि का ज्ञान कर लेते थे। पाठकों को ज्ञात होना चाहिये कि तिथियों का क्रम शरीर से ही ज्ञातव्य है। यदि पूर्वजों के स्वर में व्याघात पड़ जाता तो वे स्वयं समझ लेते थे कि आज अमुक तिथि टूट गई है, क्योंकि शुद्ध पुरुष के स्वर प्रकृति के अनुसार चलते हैं। इस प्रकार तिथि ज्ञान के अनन्तर गणित ज्योतिष का ज्ञान हुआ।

इसी प्रकार आज भी यदि कोई आदमी इस कुछ कष्ट-साध्य और स्वयं के ज्ञानगम्य विषय का सुबह प्रत्यक्षी-करण करे तो निःसन्देह वह दैनिक, पाक्षिक, मासिक, वार्षिक और अनन्त भविष्य का ज्ञान पहले ही कर सकता है।

स्वर से भविष्यज्ञान

हमारे प्राचीन स्वर ज्ञाता महर्षि केवल प्रति दिन का ज्ञान ही नहीं किन्तु प्रतिपदा तिथि के सूर्योदय में पक्ष का और वर्षारम्भ की प्रतिपदा तिथि से सारे वर्ष का ज्ञान भी बता सकते थे। इतना ही नहीं वे तो इस विज्ञान के सामर्थ्य से सैकड़ों, हजारों और लाखों वर्षों का भविष्य बता सकते थे। इस प्रकार इस विज्ञान के जानकार भविष्य के गर्भ में छिपी अपनी सफलताओं को देख लेते थे।

यदि अब भी इस ओर उदासीन भारत के विज्ञान-पिपासुजन अपनी अपनी प्रवृत्ति उन्मुख करें और विशेषत. शासक वर्ग इसकी विशेषताओं के रहस्य को जान

शासकवर्ग को इस की आवश्यकता

कर शासन करें तो वह शासितों के सबसे बड़े शुभ-चिंतक होंगे। वह अभी से महामारी, बाढ आदि उपद्रवों के दमन का उपाय सोच कर अपने देश को अमन चैन में रख कर 'प्रजाहित भर्ता' पद के न्यायत अधिकारी हो सकते हैं।

पंचम प्रकाश

श्वास से स्वर जानने की विधि एवं पंच तत्त्व

किस समय कौन सा स्वर चला करता है, इसका वर्णन पिछले अध्याय में कर चुके हैं। अब यह देखना है कि चन्द्र एवं सूर्य स्वरों में कौन सा कब चल रहा है। इसका ज्ञान सहज है। स्वरों में आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी ये पाँच तत्त्व वर्तते रहते हैं और इनमें एक दूसरे का अन्तर, प्रत्यन्तर भी होता है। इन तत्त्वों को तथा उनके अन्तर प्रत्यन्तर को पहिचानना सब से कठिन काम है; क्योंकि यह ज्ञान अनुभव से प्राप्त होता है। स्वर और तत्त्व के प्रत्येक क्षण (विपल) का ज्ञान

स्वरों में प्रतिक्षण का ज्ञान आवश्यक क्यों?

भी आवश्यक है। अतः इस विषय के ज्ञान पिपासु को छोटे-से छोटे समय के अंश का ध्यान रखना जरूरी है। उदाहरणार्थ हम गर्भ का प्रश्न सामने रखते हैं। इसमें यह देखने में आया है कि, पशु पक्षियों की बात ही क्या, मानव प्राणियों के भी एक साथ दो बच्चे (लड़का, लड़की) पैदा होते देखे जाते हैं। इससे ज्ञात होता है कि प्रथम क्षण में गर्भ में लड़का और दूसरे क्षण में लड़की का आधान हो गया। अत. पति पत्नी के सहवास के क्षण क्षण का बारीक अध्ययन आवश्यक है।

सूर्य और चन्द्र नाड़ी के पहचानने का सरल उपाय यह है कि जिस नसकोरेसे आसानी से श्वास चल रहा हो या एक के बन्द करने से दूसरे नसकोरेसे श्वास लेने

सूर्य एवं चन्द्र नाडी की पहिचान

में रुकावट सी जान पड़े तो प्रथम को खुले स्वर वाला नथुना और दूसरे नथुने को बन्द स्वर वाला जानना चाहिये। जिस व्यक्ति को इस विज्ञान का कुछ ज्ञान होने लग जाता है उसके अनुभव में चन्द्र सूर्य स्वर की नई नई पहिचान ध्यान में आने लगती हैं। जैसा कि मेरे अनुभव में आया है कि जिस समय जो स्वर चलता है उस समय मस्तिष्क के उस आधे हिस्से में चेतनता व प्रकाश का सा अनुभव होता है। इसके

जीव स्वर के कारण अंगों में भिन्न - भिन्न अनुभव

साथ साथ और प्रकार के अनुभव भी भिन्न भिन्न अंगों में भिन्न भिन्न समय पर होते हैं। सम्भवतः ऐसे अनुभव तत्त्व के कारण होते हैं क्योंकि यथार्थ ज्ञान केवल अनुभव पर ही निर्भर है।

प्राय मुझे अनुभव हुआ कि जिस समय जो स्वर चलता है उस समय उधर की अन्तड़ियों में नीचे से ऊपर की ओर चढ़ती हुई एक शक्ति का भान होता

जीव स्वर की ओर की अन्तड़ियों में शक्ति का भान

है और उधर स्फूर्ति अधिक जान पड़ती है। डा० रेले अपनी अंग्रेजी पुस्तक 'मिस्टीरियस कुण्डलिनी' के तीसरे अध्याय में नाडी आदि का वर्णन करते हुए लिखते हैं कि इडा मेरु दण्ड के बायीं ओर तथा पिंगला दायीं ओर रहती है। परन्तु साथ में उनका यह भी लिखना है कि इडा दाहिने नसकोरे और पिंगला बायें नसकोरे में समाप्त होती है। यह बिलकुल गलत है। श्री चरणदास का भी यही मत है कि:—

"पिंगल दाहिने अङ्ग है इडा सु बायें होय।
सुषमन इनके बीच है जब स्वर चाले दोय॥"

इस प्रकार ये भी नाडियों के सम्बन्ध में डा० रेले का ही किसी अंश में समर्थन करते हैं; **स्वर निकास के विषय में नहीं।** 'कल्याण योगांक' पृष्ठ नं० ३६० चित्र नं० १ और २ के देखने से ज्ञात होता है कि इडा, पिंगला नाडियाँ सारे शरीर में

नाडियों की गति का मार्ग

क्रमश बायें दायें चक्कर लगाती हुई स्वर निष्कासन के समय ठीक हो जाती हैं। डा० रेले हमारे इस मत से तो सहमत हैं कि नाडिया अपने अपने स्थान में ठीक तौर से स्वर को गले तक पहुँचाती हैं परन्तु उनका मत है कि बाह्य निष्कासन के समय वे विरुद्ध-धर्मा हो जाती हैं; अर्थात् बांया स्वर दाहिने और दाहिना स्वर बायें नथुने से निकलता है। हम तो दोनों के विपरीत अपने अनुभव के आधार पर भिन्न राय देते हैं, क्योंकि देखने में आया है कि जब कोई दाहिनी ओर की नाडी को सोकर या अन्य उपाय से दबाता है तो उस ओर की नाडी चलनी बन्द हो जाती है। यदि दोनों नाडियां दोनों ओर चक्कर लगा कर चलतीं तो शयन आदि से एक ओर की नाडी बन्द नहीं होती और दोनों ही ओर उसका प्रभाव पड़ता। केवल सोने से ही नहीं परन्तु घुटने को कांख में देने से भी सबधित नाडी पर प्रभाव पड़ता है यानी उधर की नाडी दब जाती है और दूसरे भाग पर जोर दिया जावे तो उस ओर की नाडी बन्द हो जाती है। हथेली जमीन पर टेक कर उस पर जोर देने से उस ओर का स्वर बन्द हो जाता है या उधर की पसली पर कुहनी लगा दी जाय तो भी उधर की नाडी एक दम बन्द हो जाती है। अत. ये सब प्रामाणिक बातें इस मत का समर्थन करती हैं कि इडा बायीं ओर तथा पिंगला दाहिनी ओर रहती है। अन्यथा दाहिना भाग दबाने से दाहिनी नाडी पर पूर्ण रूपेण प्रभाव न पड़ कर बायीं पर भी किसी अंश तक पड़ता यदि दोनों नाडियां एक दूसरी ओर चक्कर खाकर चलती होतीं। अत निश्चय हुआ कि चन्द्र नाडी बायीं ओर व सूर्य नाडी दाहिनी ओर ही रहती है।

सन्तराम बी० ए० कृत *'Practical Yoga'* के अनुवाद में भी चन्द्र नाड़ी का बायीं ओर व सूर्य नाड़ी का दाहिनी ओर रहना लिखा है; परन्तु इडा का दाहिने नथुने में व पिंगला का बायें में प्रवेश करना अनुचित है। सम्भव है कि योगांक का मत किसी सीमा तक ठीक हो पर यह ध्यान रहना चाहिये कि इडा बायें तथा पिंगला दायें ओर ही रहती है, क्योंकि इसे डा० रेले, चरणदास व अन्य आचार्यों और प्रतिदिन के मेरे प्रत्यक्ष अनुभव ने सिद्ध कर दिया है। हो सकता है कि इडा की कोई अवांतर शाखा दायीं ओर तथा पिंगला की शाखा बायीं ओर आ जावे। परन्तु मैं इसको प्रमाण रूप में तो नहीं मान सकता इसके अन्तिम निर्णय के लिये पाठकों व योगी जनों का ध्यान आकर्षित किया जाता है।

जीव स्वर की ओर का नसकोरा अन्दर से साफ ज्ञात होना

जीवस्वर का भाग चेतन तो होता ही है उस ओर का नसकोरा अन्दर से खुला हुआ व साफ भी ज्ञात होता है।

जैसा ऊपर बतलाया है, चन्द्र और सूर्य नाड़ी में पांच प्रकार के तत्त्व प्रयुक्त होते हैं और इन पांच तत्त्वों में से प्रत्येक में एक दूसरे का अन्तर भी आता है। यद्यपि पूर्ण रूप से इस बात का निश्चय नहीं हुआ कि

पंच तत्त्व और उनका क्रम

अमुक अन्तरतत्त्व में अमुक प्रत्यन्तर तत्त्व कम चलता है, पर मेरे ध्यान में आता है कि अन्तरतत्त्व में प्रत्यन्तर तत्त्व होता जरूर है। इस प्रकार तत्त्वों का हिसाब बारी बारी से चालू रहता है। तत्त्व पांच हैं — आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी।

तत्त्वों में कौन पहले और कौन बाद में चलता है, इस पर भिन्न भिन्न मत हैं। 'शिव स्वरोदय' में लिखा है कि प्रथम वायु, दूसरे अग्नि, तीसरे पृथ्वी और चौथे जल

तत्त्वों की गति में पूर्वापर विचार और तत्त्वोत्पत्ति

रहता है। इस प्रकार एक स्वर की अढाई घड़ी में पांचों तत्त्व उपरोक्त क्रम से प्रकट होते हैं। 'शिव स्वरोदय' के छठें व सातवें श्लोक में लिखा है कि निराकार एक महेश्वर देव से आकाश उत्पन्न हुआ, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल और जल से पृथ्वी। इसी प्रकार का वर्णन 'गीता रहस्य' में भी है कि परमात्मा से आकाश, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल और जल से पृथ्वी उत्पन्न हुई। 'तैत्तिरीयोपनिषद्' (२ १, में इनका उत्पत्ति क्रम इस प्रकार बताता है.—

"आत्मन आकाश संभूत । आकाशाद्वायु. ।
वायोरग्नि । अग्नेराप । अद्भ्य पृथिवी । पृथिव्या ओषधय ।"

परन्तु इसमें इस क्रम का कारण क्या है नहीं लिखा गया। वेदान्त ग्रन्थों में पच महाभूतों के उत्पत्ति क्रम के कारणों का विचार सांख्य शास्त्रोक्त गुणपरिणाम सिद्धांत पर ही किया गया है। इन उत्तर वेदान्तियों का कथन है कि "गुणा गुणेषु वर्तन्ते' इस न्याय से पहले एक ही गुण का पदार्थ उत्पन्न हुआ और उससे दो गुणों के पदार्थ, आदि आदि। आकाश में शब्द गुण ही प्रधान है, अत उसको पहले पैदा होना चाहिये। वायु में शब्द स्पर्श दो गुण हैं, क्योंकि जब वायु जोर से चलती है तब उसकी आवाज सुनाई देती है और हमारी स्पर्शेन्द्रिय को भी उसका ज्ञान होता है, जब वायु हमारे शरीर का स्पर्श करती है। अत दो गुणवाला वायुतत्त्व दूसरा उत्पन्न हुआ। तीसरा तीन गुणवाला अग्नितत्त्व पैदा हुआ। इसके तीन गुण—शब्द, स्पर्श, व रूप हैं, अर्थात् यह आवाज करता है, छूने से प्रभाव पड़ता है और उसके रूप भी है। चौथा शब्द, स्पर्श, रूप, रस चार गुणवाला जलतत्त्व पैदा हुआ। इसमें अग्नि से एक अधिक गुण रस है। पांचवां पांच गुण वाला पृथ्वी तत्त्व उत्पन्न हुआ। इसमें जल के उपर्युक्त गुणों के सिवा गन्ध गुण और अधिक है।

बाबू ब्रजमोहनलाल वर्मा बी. ए अपने ग्रन्थ 'ब्रह्मयोग विद्या' में 'शिव स्वरोदय' के ७१ वें श्लोक के अनुसार ही तत्त्व क्रम लिखते हैं, परन्तु उनके आगे पीछे होने का कारण नहीं बताते हैं। मेरी समझ में इनका क्रम आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी क्रमश होना चाहिये। ब्रह्माण्ड के उत्पन्न होने के संबंध में 'शिव स्वरोदय' के सातवें श्लोक में इस तत्त्व क्रम की पुष्टि होती है। दूसरे वेदान्त, और सांख्य मत वालों का भी यही क्रम है और याज्ञकाचार्य का भी यही मत है।

'शिव स्वरोदय' के श्लोक ७१ में जो तत्त्व क्रम लिखा है, और जिसका समर्थन बाबू ब्रजमोहनलाल वर्मा बी. ए. ने भी किया है, वह अपूर्ण है, क्योंकि इन तत्त्वों के वर्णन में आकाश तत्त्व का उल्लेख ही नहीं है कि यह कब चला करता है। सम्भव है 'शिव स्वरोदय' के ७१ वें श्लोक में कमी रह गई हो अन्यथा आकाश तत्त्व का उल्लेख अवश्य करना चाहिये था। मैंने जो तत्त्वों का क्रम बताया है वह ठीक है, क्योंकि यह युक्ति-युक्त है तथा जब नाडी बदलती है तो प्रारम्भ में आकाश तत्त्व उसी में से बहता हुआ ज्ञात होता है। तदनन्तर वायु, अग्नि आदि तत्त्व चलते हैं, और सबसे बाद में पृथ्वी तत्त्व बहता है। जब तक इसके विपरीत अन्य कोई प्रामाणिक तथ्य न मिले तब तक यही मान्य है।

आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी अढाई घड़ी (१ घण्टा) में क्रमश ४, ८, १२, १६, २० मिनट तक चलते हैं। जब नाडियाँ अढाई घड़ी के नियम से चलें तब तो यह नियम ठीक है, परन्तु यह क्रम उस समय लागू नहीं होना चाहिये और न होता है जब कि एक नाडी अढाई घड़ी से ज्यादा समय ले लेवे, क्योंकि उस समय तत्त्व भी ज्यादा या कम चलते हैं— ऐसा मेरे अनुभव में आया है। यथा—जब नाडी बदलती है और उस नाडी को कुछ निश्चित समय तक

तत्त्वों का समय

चलना होता है तो उसी निश्चित समय के अनुसार तत्त्व चलने प्रारम्भ होते हैं, परन्तु यदि बीच में नाडी बदल गई तो वह तत्त्व चालू नहीं रहेगा जो बदलती हुई नाडी में चल रहा था और बदलता हुआ तत्त्व अपनी दूसरी बदलती हुई नाडी में प्राय उतना ही समय लेगा जितना बाकी रहा है। जैसे मान लो इडा चार घण्टे चलेगी तो बारी बारी से तत्त्व आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी क्रमश. १६, ३२, ४८ ६४ और ८० मिनिट प्राय. चलेंगे। अब यदि इसी प्रकार तत्त्व क्रम बह रहा है, परन्तु तीन घण्टे के बाद इडा नाडी बदल गई तो तत्त्व क्रम बिगड़ जायेगा, क्योंकि प्रथम तो इडा पिंगला के बीच में सुषुम्णा का कुछ अन्तर अवश्य होगा और ऐसा होने से यह सिद्ध हुआ कि तत्व क्रम हिसाब से ठीक नहीं चला। मेरी राय में यही हो सकता है कि २४ घटों में तत्त्वों का जोड़ मिलाने से हिसाब के अनुसार प्रायः सबकी बारी आ जावेगा। अत प्रत्येक अभ्यास करने वाले को पूरा ध्यान रखना चाहिये।

तत्त्वों के नक्षत्र

'शिव स्वरोदय' में पृथ्वी के–धनिष्ठा, रोहिणी, ज्येष्ठा, अनुराधा, श्रवण, अभिजित् और उत्तराषाढ़ा नक्षत्र हैं। जल के–पूर्वाषाढा, अश्लेषा, मूल, आर्द्रा, रेवती, उत्तरा भाद्रपदा, शतभिषा। अग्नि के–भरणी, कृत्तिका, पुष्य, मघा, पूर्वाफाल्गुनि, पूर्वाभाद्रपदा, स्वाति। वायु के–विशाखा, उत्तराफाल्गुनि, हस्त, चित्रा, पुनर्वसु, अश्विनी, मृगशिरा हैं। और आकाश में कोई नक्षत्र नहीं लगाया गया है, क्योंकि अठाइस के अठाइस नक्षत्र उपर्युक्त चारों तत्त्वों में लगा दिये गये हैं। 'सद्-ज्ञान चिन्तामणि' में भी जोधपुर-वासी श्री रामलालजी ने यही लिखा है। ज्ञात होता है कि उन्होंने भी 'शिव स्वरोदय' से लिया है। श्री ब्रजमोहनलाल वर्मा बी. ए. ने 'ब्रह्मयोग विद्या' में इडा नाडी में

मघा, पूर्वाफाल्गुनि, उत्तराफाल्गुनि, अश्लेषा, हस्त, चित्रा, स्वाति, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल और पूर्वाषाढ़ा लिखे हैं और पिंगला में–अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, उत्तराषाढ़ा, अभिजित्, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वाभाद्रपदा, रेवती रोहिणी और सुषुम्णा में–मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य लिखे हैं। इस प्रकार नक्षत्रों का वर्णन ग्रन्थावलोकन करते समय आता है, जिसका विशद रूप से आगे वर्णन होगा।

स्वरों की राशि

सूर्य स्वर की राशियां–मेष, कर्क, तुला और मकर हैं यानि सूर्य स्वर की राशियां चर कारक हैं। चन्द्र स्वर की राशियां–वृष, सिंह, वृश्चिक और कुम्भ हैं यानि चन्द्र स्वर की राशियां स्थिर कारक हैं। सुषुम्णा की राशियां–मिथुन, कन्या, धन और मीन यानी द्विस्वभाव हैं।

इन बारह राशियों के बारह महीने संक्रान्ति सम्बन्धित राशि के दिन से गिन कर इन स्वरों की राशियां जाननी चाहिये। जैसे मेष संक्रान्ति का महीना सूर्य स्वर का महीना कहलायेगा। 'शिव स्वरोदय' में दिन रात में बारह राशियां बताई हैं, जिनमें ६ चन्द्रमा की और ६ सूर्य की हैं।

स्वरों के देवता

इडा नाड़ी का देवता ब्रह्मा है। पिंगला का शिव और सुषुम्णा का विष्णु है, ऐसा श्री ब्रजमोहनलाल वर्मा बी ए. ने लिखा है।

षष्ठ प्रकाश

स्वर, तत्त्व, अन्तरतत्त्व व उनके फल

'स्वरों का ज्ञान आठ प्रकार का है' ऐसा "शिव स्वरोदय" में वर्णित है, यथा-

स्वरों का आठ प्रकार का ज्ञान

प्रथम तत्त्वों की संख्या, दूसरा श्वास की संधि, तीसरा स्वरों के चिन्ह, चौथा स्वरों का स्थान, पांचवा वर्ण, छठा प्राण, सातवाँ स्वाद और आठवाँ गति है। अन्य ग्रन्थों में इनसे अधिक भेद भी दिखाये गये हैं, जो "शिव-स्वरोदय" में आगे पीछे जरूर आगये हैं। तत्त्वों की संख्या पहले देदी गई है;

तत्त्वों को जानने के लिए, प्रात काल से लेकर समय समय पर ध्यान लगावे और ध्यान लगाने के लिए दोनों अंगूठों से दोनों कानों के छिद्र, दोनों

प्रातः ध्यान

अनामिकाओं से दोनों आँखें, दोनों मध्यमांगुलियों से दोनों नसकोरे तथा दोनों तर्जनियों एवं कनिष्ठिकाओं से मुख बन्द करके समाधिस्थ होकर तत्त्वों का रङ्गों से पता चलावे और समाधि त्याग कर दर्पण में मुँह देखे। इनको पहचानने के लिये श्वास को छोड़े। यह विधि साधारण रूप से हर तत्त्व में काम लेनी चाहिए।

"साधनांक" के पृष्ठ २०६ में जिन जिन तत्त्वों का जो जो मण्डल बताया

पञ्चघटी तक

गया है उन तत्त्वों के गुण और स्थानादि की धारणा प्राणों को स्थिर करके पांच घटिका तक ध्यान करना चाहिये। ऐसी धारणा

प्राण स्थिर करके ध्यान करते करते तत्त्वों के अनुसार उनके गुण आदि साधक को अनुभव होने लगते हैं जैसा कि भिन्न तत्त्वों में आगे वर्णन किया गया है।

तत्त्व विभाग भारतीय दर्शन के अनुसार पांच तत्त्व हैं, जैसे आकाश वायु, अग्नि, जल, तथा पृथ्वी। भौतिक जगत में ये तत्त्व पञ्चीकृत अवस्था में यानि पृथक् पृथक् व उससे पूर्व पञ्च तन्मात्राओं यानि सूक्ष्म रूप में रहते हुए कहे जाते हैं।

परस्पर संयोग के कारण इनका सम्मिश्रण स्वाभाविक है, और इनकी एक दूसरे पर प्रतिक्रिया होती है जिसको पञ्ची-करण कहते हैं। इस प्रतिक्रिया का फल यह होता है कि एक प्रधान तत्त्व का आधा भाग तथा दूसरे चार गौण तत्त्वों का मिलकर दूसरा आधा भाग होता है, जिसमें ये चारों सम मात्रा में रहते मानेजाते हैं। उदाहरणत पञ्चीकृत आकाश तत्त्व में आधा भाग ½ आकाश तत्त्व का और शेष आधे भाग में या ½ में अन्य चार तत्त्व, प्रत्येक ⅛ के अनुपात से होंगे, यानि वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी। यही बात अन्य तत्त्वों पर लागू होगी। इस प्रकार प्रत्येक तत्त्व के मिश्रित भागों मे प्रधानता मुख्य तत्त्व की रहेगी क्योंकि उसका भाग आधा होगा। विश्व के यावन्मात्र पदार्थ इन्हीं पञ्चीकृत तत्त्वों से बने हुवे हैं।

उक्त विभाग हमने कई आचार्यों के मत के अनुसार बतलाया है। हमारी राय म इनका विभाग निश्चित अर्कों मे नहीं किया जा सकता क्योंकि सारे तत्त्व परस्पर मिश्रित रहते ह और उनका अशांश निर्धारित रूप म नहीं बतलाया जा सकता।

तत्त्व जानना साधक प्रात काल आसन लगाकर बैठे और नाक द्वारा जोर जोर से श्वास श्वास फेंक कर फैंके। जितनी दूर श्वास जावे उतनी दूर पर ध्यान देने से एक प्रकार का धूँआ प्रतीत होगा। उसम पांच रङ्ग ज्ञात होंगे —

आकाश तत्त्व— काला रङ्ग, नाक के बिलकुल पास।

वायु तत्त्व— हरा रङ्ग, आठ अंगुल पर।

तत्त्व क्रम

पृथ्वी

½ पृथ्वी — अस्थि

½

जल	तेज	वायु	आकाश
मांस	नाड़ी	त्वचा	रोम

जल

½ जल — वीर्य

½

अग्नि	वायु	आकाश	पृथ्वी
पित्त	स्वेद	लार	रुधिर

अग्नि

½ अग्नि — क्षुधा

½

पृथ्वी	पवन	आकाश	जल
तृषा	निद्रा	आलस्य	कान्ति

वायु

½ वायु — धावन

½

आकाश	अग्नि	पानी	पृथ्वी
पसरन	उछलन	चञ्चलता	सङ्कोचन

आकाश

½ आकाश — लोभ

½

पृथ्वी	जल	अग्नि	वायु
मत्सर	मोह	क्रोध	मद
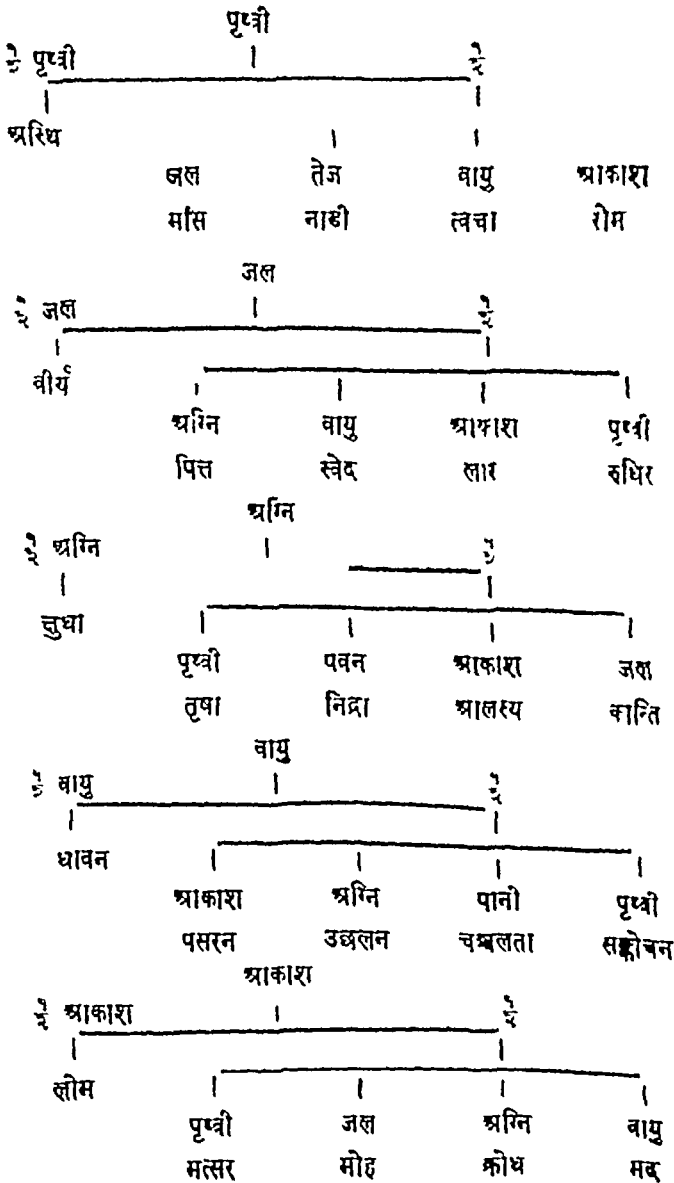
तत्त्व— लाल रङ्ग, चार अंगुल पर।

त्त्व— सफेद रङ्ग, सोलह अंगुल पर।

तत्त्व— पीला रङ्ग, बारह अंगुल पर।

कांच के टुकडे पर श्वास से तत्त्व ज्ञान

काच के टुकड़े पर नाक मे श्वास छोड़ने पर बूँदेंसी नज़र आवेंगी। उनमें रङ्ग देखने और कुछ समय तक अभ्यास करने से अवश्य सिद्धि होगी। पर यह एकान्त में करना उपयुक्त होगा।

भाव से तत्त्व जानना

अग्नि तत्त्व में क्रोध, वायु में इच्छा, जल तथा पृथ्वी में क्षमा के होने का प्रमाण श्रीयुक्त रामलाल ने अपनी पुस्तक 'सद्ज्ञान चिन्तामणि' में लिखा है।

पचरंग गोली से तत्त्व ज्ञान

पांच रङ्ग की पांच गोलियाँ बनाले, फिर आँखें बन्द कर एकाग्रता से पाच मिनट तक ॐ मन्त्र का जाप करने के बाद बिना देखे एक गोली निकाल ले। बहुधा तत्त्व का रङ्ग निकल आता है। इसी प्रकार किसी मित्र से कहो कि वह किसी रङ्ग का मन में ध्यान करे तो जिस रंग का वह ध्यान करेगा उस समय उसी रंग का तत्त्व चल रहा है ऐसा जानना चाहिए।

"कल्याण शक्ति अङ्क" के पृष्ठ ५८१ पर शब्द उच्चारण के प्रभाव का बहुत सुन्दर विवेचन किया है जिसका कुछ सारांश नीचे दिया जाता है.—

"जिन अक्षरों से शब्द बनता है उनके उच्चारण स्थान पांच हैं। होठ, मूर्द्धा, दाँत, तालु और कण्ठ। प्रत्येक स्थान एक एक तत्त्व का स्थल है। होठ पृथ्वी तत्त्व का, जीभ जल का, दाँत अग्नि का, तालु वायु का और कंठ आकाश तत्त्व का स्थान है। मन्त्रों के ऐसे अक्षर या शब्द, जिनका उच्चारण

शब्दोच्चारण से होठ से होता है, पृथ्वी तत्त्व का विकास करके जपकर्त्ता मे
तत्त्वों का प्रबल पृथ्वी तत्त्व को प्रबल बनाते हैं। इसी प्रकार मूर्द्धा से उच्चारण
बनना होने वाले अक्षर या शब्द जल तत्त्व को, तालु से उच्चारण होने वाले वायु तत्त्व को, दाँत से उच्चारण होने वाले अक्षर अग्नि तत्त्व को और कण्ठ से उच्चारण होने वाले आकाश तत्त्व को प्रबल बनाते हैं।

पृथ्वी तत्त्व का निवास मूलाधार चक्र में है। इसको अंग्रेजी में *Pelvic Plexus* कहते हैं। इस मत के समर्थक प० तडिक्कान्त झा हैं। आपके मतानुसार शरीर में योनि के पास सीवनी में सुषुम्णा संलग्न है। यहीं से सुषुम्णा
पृथ्वी तत्त्व आरम्भ होती है। प्रत्येक चक्र का आकार कमल सा है। यह चक्र भूलोक का प्रतिनिधि है। पृथ्वी तत्त्व का ध्यान इसी चक्र से किया जाता है। इसका रङ्ग पीला, विशेष गुण गन्ध, स्वाद मधुर और बीज लं है। इसमें श्वास की गति नसकोरे के मध्य भाग में से होती है और श्वास का प्रवाह बारह अङ्गुल है। यह साधारण रूप से पचास पल यानि बीस मिनट तक रहता है। आकृति चतुष्कोण है। रङ्ग का पता उपरोक्त रूप से समाधिस्थ होकर लगाना चाहिये। इसका ज्ञान साधारण बात नहीं है। इससे तत्त्व की पहिचान हो जाती है और तत्त्व के ज्ञान में पूर्ण सफलता मिलती है। परन्तु कष्ट-साध्य अवश्य है। अत प्रातःकाल काफ़ी समय तक एकाग्रचित्त से अभ्यास करने पर सफलता मिलती है, क्योंकि विचार ही प्रत्येक वस्तु की प्राप्ति का प्रधान कारण है। मेरा भी यही अनुभव है और मैंने भी विचार से ही कठिनाइयों को पार किया है। इस विचार प्रधानता तथा अनुभव से हरेक वस्तु किसी सीमा तक इच्छानुसार प्राप्त कर रहा हूँ।

ऊपर लिखे अनुसार समाधि के बाद दर्पण में अपना मुख देख कर उसी पर श्वास छोड़ना चाहिये। यदि आकृति चतुष्कोण हो तो समझना चाहिये कि पृथ्वी तत्त्व चल रहा है क्योंकि इस तत्त्व की आकृति चतुष्कोण है।

स्वाद इस तत्त्व का मधुर है। जब पृथ्वी चल रहा हो तो मधुर स्वाद का भान होता है। बहुत से आदमी स्वादसे ही तत्त्व पहिचान लेते हैं, अतः इसका भी अभ्यास करना चाहिये। इसका सक्रिय अभ्यास आवश्यक है, क्योंकि ये बातें सिद्धान्त मात्र से नहीं जानी जा सकतीं। इसकी चाल नसकोरेके मध्यभाग में होती है और बारह अङ्गुल तक जाती है। ध्यान देने से मालूम पड़ता है कि श्वास नसकोरे के मध्य भागमे अर्थात् उसके बीच में से सीधा साफ खुला हुआ बहता है और दूसरा नसकोरा बिलकुल बन्द रहता है। पण्डित तडित्कान्त झाने इसकी रीति यह बताई है कि बारीक धुनी हुई रुई या बारीक धूल गत्ते पर रख, जिस नसकोरेमे श्वास चल रहा हो उसके पास लेजाने से रुई या धूल हिलने या उड़ने लगे तो उड़ने तक दूरी को नापो। वह जितने अङ्गुल होगी उसी के अनुसार तत्त्व की उपस्थिति जाननी चाहिये। मैंने इसका परीक्षण किया पर सन्तोष न हुआ अत यह तत्त्व पहचाननेकी उत्तम रीति नहीं कही जा सकती।

इस तत्त्वका गुण विशेषतया गन्ध है। वैसे शब्द, स्पर्श, रूप, रस भी पाये जाते हैं, परन्तु गन्ध गुण इसको अन्य तत्त्वोंसे अलग करता है। इसकी ज्ञानेन्द्रिय नासिका और कर्मेन्द्रिय गुदा है। शरीर में पाण्डु (पीलिया) रोग इसी तत्त्वके विकारसे पैदा होता है। मानसिक विचारों में भी इसी तत्त्वकी प्रधानता रहती है यथा भय आदि जो इससे सम्बन्धित हैं। परन्तु वे मूलाधार चक्रमें ध्यान स्थिर करने से स्वयमेव शान्त हो जाते हैं।

"कल्याण साधनांक" पृष्ठ ३१० में बताया गया है कि प्राणों को स्थिर करके पृथ्वी तत्त्व के गुणोंका ध्यान करे। ऐसा करने से यह अनुभव होने लगता है कि, मैं इस एक शरीरमें आबद्ध नहीं हूँ। मैं सम्पूर्ण पृथ्वी हूँ। ये बड़े बड़े नदी-नद मेरे

शरीरका नस एवं नाड़ियां हैं और सम्पूर्ण जीवों के शरीर रोग अथवा आरोग्यके कीटाणु हैं। समस्त पार्थिव शरीर मेरे अपने ही अङ्ग हैं। 'घेरण्डसंहिता' में कहागया है कि जो उक्त प्रकारसे पृथ्वीकी धारणा करके उसको हृदयमें प्राणों के साथ चिन्तन करते हैं वे सम्पूर्ण पृथ्वी पर विजय करने में समर्थ होते हैं। शारीरिक मृत्यु पर उनका आधिपत्य हो जाता है। योगी याज्ञवल्क्यका कथन है कि पृथ्वी धारणा सिद्ध होने पर शरीरमे किसी प्रकारके भी रोग नहीं होते। मनुष्य शरीरमें पैरसे लेकर जानु पर्यन्त पृथ्वीमण्डल है। 'शिव स्वरोदय' भी इसी बातका समर्थन करता है, क्योंकि उसमें जानु देश में पृथ्वी का होना बतलाया है। (देखो 'शिव-स्वरोदय' श्लोक १५७)। पृथ्वी और जलकी धारणासे श्लेष्मज दोष नष्ट होजाते हैं।

ध्यान विधि यह बताई गई है कि एक पहर रात रह जाने पर शान्त स्थल में पवित्र आसन पर दोनों पैरों को पीछे की ओर मोड़ कर उन पर बैठ जावे और दोनों हाथ उलटे करके घुटनों पर ऐसे रक्खे कि जिससे अङ्गुलियों की नोक पेट की ओर रहें। तब नासाग्र दृष्टि रखते हुए मूलाधार चक्र में ल बीजवाली चौकोण पीली पृथ्वी का ध्यान करे। ऐसा करने से नासिका सुगन्धसे भर जावेगी और शरीर स्वर्ण-समान कान्तिवाला हो जायगा। ध्यान करते समय पृथ्वीके समान उपरोक्त गुणोंका प्रत्यक्ष करनेका प्रयत्न करना चाहिये और ल बीजका जाप करना चाहिये। यह तत्त्व स्थिर कार्यको सिद्ध करनेवाला है —

"लबीजां धरणीं ध्यायेच्चतुरस्रां सुपीतभाम्।
सुगन्धस्वर्णवर्णत्वमारोग्यं देह-लाघवम् ॥"

उपर्युक्त नोट ४ के अनुसार पृथ्वी तत्त्वके दो भाग हुए प्रथम भागसे अस्थि (हाड) दूसरे भागसे मांस, रोम, नाडी और त्वचा हुए।

जल तत्त्वका निवासस्थान स्वाधिष्ठान चक्र *(Hypogastric Plexus)* में है। यह चक्र पेड़ू अर्थात् लिंग (जननेन्द्रिय) के मूल में स्थित है। यह चक्र "भुव" लोक का प्रतिनिधि है। इसका ध्यान इसी तत्त्वमें किया जाता है। इसका रङ्ग श्वेत है। विशेष गुण रस, स्वाद कसैला और बीज व है। इसमें श्वासकी गति नमकारे के निचले भाग में से होती है और श्वास का परिमाण १६ अङ्गुल और साधारण रूपसे ४० पल (१६ मिनट) तक रहता है। आकृति अर्द्धचन्द्राकार है। इस तत्त्वकी जिह्वा ज्ञानेन्द्रिय और उपस्थ (लिंग) कर्मेन्द्रिय है। रङ्ग पृथ्वी तत्त्वके समान ध्यान रखके जानना चाहिये। आकृति भी पृथ्वी तत्त्वके अनुसार ही अभ्यास करके समझनी चाहिये। कटु, तिक्त, अम्ल, कषाय आदि समस्त रसास्वाद इसी तत्त्वके कारण होते हैं। मोह आदि विकार इसी तत्त्वके परिणाम हैं। ध्यानविधि—

जल तत्त्व

वंबीजं वारुणं ध्यायेदर्धचन्द्रं शशिप्रभम् ।
क्षुत्पिपासासहिष्णुत्वं जलमध्येषु मज्जनम् ॥

अर्थात् 'व' बीजवाले अर्धचन्द्राकार चन्द्रमा के समान कान्तिवाले जल तत्त्व का उक्त चक्र में ध्यान करे। इससे भूख प्यास मिटकर सहनशक्ति उत्पन्न होती है और जलमें अव्याहत गति होजाती है। 'कल्याण साधनांक' पृष्ठ २०६ में लिखा है कि इसके चिन्तनसे ऐसा अनुभव होने लगता है कि मैं जल तत्त्व हूँ। पृथ्वीका कपाट मेरे अस्तित्वमें ही सन्नद्ध है। स्वर्गीय अमृत और विष दोनों ही मेरे स्वरूप हैं। जल धारणा सिद्ध हो जाने पर समस्त ताप मिटजाते हैं और अन्तःकरण के विकार धुलजाते हैं। मेरे अनुभवमें आया है कि जलतत्त्वमें चित्त बड़ा प्रसन्न रहता है और इसके जाननेके विशेष चिह्न ये भी हैं कि इसके विद्यमान रहने पर बड़ी मस्ती प्यास

लगती है और पानी स्वादिष्ट लगता है। चर कार्यमें यह विशेष रूपमे सिद्धिप्रद है। इसके रहते जलमें गोता मारने पर डूबे रहनेकी शक्ति आजाती है।

जलतत्त्व के स्थान के विषय में 'शिव स्वरोदय' श्लोक १५७ में लिखा है कि पैरों के अन्त में जल स्थित है। यह बात साफ नहीं है कि पैर कितने हिस्से को माना गया है। इसमें टांगें सम्मिलित हैं या नहीं। यदि टांगें पैरों में गिनी जावें तो अर्थ ठीक बैठ सकता है, क्योंकि साधनांक पृष्ठ २०६ में जल का स्थान जानु से लेकर पायु इन्द्रिय तक कहा है और इसका स्वाधिष्ठान चक्र भी यहीं पड़ता है। अत पैरों का अर्थ टांगें समझना ही उपयुक्त होगा। किसी किसी आचार्य के मत से नाभि तक उसको माना है, परन्तु एक तो योगी याज्ञवल्क्य इसे स्वीकार नहीं करते, दूसरे चक्रों तथा अन्य आचार्यों का मत देखते हुए यह अग्नितत्त्व का स्थान गिना गया है। इससे यह प्रमाणित हुआ कि जलतत्त्व पायु इन्द्रिय पर्यन्त है।

उपर्युक्त नियम ४ के अनुसार जलतत्त्व के प्रथम भाग से वीर्य, दूसरे भाग से पित्त, पसीना, रुधिर और लार ये चार चीजें पैदा हुईं। 'सध्या विज्ञान' पृ० न० ११६ में स्वामी अचलरामजी पित्तकी जगह मूत्र लिखते हैं। 'शिवस्वरोदय' का मत यह है —

शुक्रशोणितमज्जाश्च मूत्र लालश्च पञ्चमम्।
आप पञ्चगुणा प्रोक्ता ब्रह्मज्ञानेन भाषितम्॥

अर्थात् वीर्य, शोणित (रक्त)–स्त्री का रज, मज्जा, मूत्र और पांचवीं लार, ये पांचगुण जलके हैं।

शरीर में अग्नितत्त्व का निवास स्थान मणिपुर चक्र (*Epigastric Plexus*) है। यह चक्र नाभि में है और 'स्व' लोक का प्रतिनिधि है। रस

अग्नि तत्त्व लाल, गुण रूप, आकृति त्रिकोण, ज्ञानेन्द्रिय आँख और कर्मेन्द्रिय पैर हैं। क्रोध लृजन, अपच आदि विकार इसकी सिद्धि से दूर होते हैं और इससे कुण्डलिनी का जागरण सरल हो जाता है। इसकी सिद्धि होने पर ज्यादा जल तथा अन्न ग्रहण करने की शक्ति तथा धूप, अग्नि सहने की शक्ति आ जाती है। दोनों कन्धों पर अग्नि स्थित है। रं बीजवाले त्रिकोण और अग्नि के समान लाल प्रभा वाले उक्त चक्र में अग्नि का ध्यान करे। यथा -

> र बीज शिखिन ध्यायेत् त्रिकोणमरुणप्रभम् ।
> बह्वन्नपानभोक्तृत्वमातपाग्निसहिष्णुता ॥

इसका स्वाद तीखा है। पर 'शिव स्वरोदय' कड़ुआ मानता है। उसमें इसका स्थान स्कन्धों पर लिखा है जो ठीक नहीं, क्योंकि अन्य ग्रन्थों में और इसके चक्र के स्थान एवं 'कल्याण साधनांक' पृष्ठ ३०६ के देखने से ज्ञात होता है कि अग्निमण्डल पायु इन्द्रिय से हृदय तक है। इसकी धारणा सिद्ध होने के बाद ऐसा भासता होता है कि मैं अग्नि स्वरूप हूँ। सूर्य चन्द्र एवं विद्युत् रूप में मैं ही प्रकाशित होता हूँ। सबके उदर में रहकर मैं ही धारण एवं पोषण करता हूँ। सबके नेत्रों के रूप में प्रकट होकर मैं ही सब कुछ देखता हूँ। समस्त देवताओं का शरीर मेरे द्वारा बना है। साधक को जलती हुई अग्नि में डाल दिया जावे तो वह जलता नहीं। स्वामी रामतीर्थ आदि उच्चकोटि के महात्मा भी शायद इस कोटि तक पहुँच कर यह कहने लग गये थे कि— "मैं अग्नि स्वरूप हूँ"। समस्त भुवन के रक्षक सूर्य चन्द्र आदि नक्षत्र मेरी शक्ति से कार्य में तत्पर हैं। ऐसा कहना घमण्ड नहीं, किन्तु इस स्थिति में ज्ञानी को ऐसा भासित होने लगता है, और वह ऐसा कहने के लिये बाधित हो जाता है।

अग्नितत्त्व नसकोरे के ऊपर के भाग में से भँवरी खाकर चलता है और

साधारण अनुभव से यह अच्छी तरह ज्ञात हो सकता है, क्योंकि ऊपर के भाग में नसकोरे से अड़ता हुआ चलता है। इस का परिमाण चार अङ्गुल है। साधारण रूप में २० पल यानि ८२ मिनट तक रहता है। 'शिव स्वरोदय' के १७२ वें श्लोक में लिखा है कि—ऊपर के हिस्से को प्रकाशमान करता है, और १७५ वें श्लोक के अनुसार इसका फल मध्यम लिखा है। इसकी दिशा दक्षिण लिखी है।

श्वास की गति

कार्य—इस तत्त्व में क्रूर कर्म करने चाहियें।

रोग नाश—अग्निधारणा से वातज रोग नष्ट हो जाते हैं।

उपर्युक्त नियम ४ के अनुसार अग्नि तत्त्व के आधे भाग मे क्षुधा (भूख) हुई। आधे मे प्यास, आलस्य, निद्रा और कान्ति ये चार वस्तुयें हुईं। परन्तु चरणदासजी कान्ति की अपेक्षा जम्भाई लिखते हैं। इसी प्रकार 'शिवस्वरोदय' भी पांच गुण क्षुधा, तृषा, निद्रा, कान्ति और आलस्य मानता है

वायुतत्त्व अव्याहत चक्र (*Cardiac Plexus*) में स्थित है। इसका स्थान हृत् प्रदेश है और यह 'मह' लोक का प्रतिनिधि है। इसका रङ्ग हरा, आकृति षट्कोण, (गोल भी मानी गई है) विशेषगुण स्पर्श, ज्ञानेन्द्रिय त्वचा और कर्मेन्द्रिय हाथ है। ध्यानविधि पूर्वोक्त अनुसार ही मानी गई है। इसका स्वरूप —

यं बीज पवनं ध्यायेत् वर्तुलं श्यामलप्रभम।
आकाशगमनाद्यंच पक्षिवद्गमन तथा॥

अर्थात् यं बीजवाले गोलाकार तथा हरी प्रभावाले वायु तत्त्व का उपरोक्त चक्र में ध्यान करे। इससे आकाश गमन अर्थात् पक्षियों की तरह उड़ना आदि

सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। 'शिव स्वरोदय' के श्लोक १५२ में इस तत्त्व का रङ्ग काला बिन्दु रूप लिखा है और आकृति गोल।

श्वास की गति-चाल इसकी टेढी (तिरछी) अर्थात् एक तरफ है। श्वास का परिमाण-इसका परिमाण आठ अङ्गुल है। आठ मिनट तक यानि बीस पल तक रहता है।

स्वाद—इसका खट्टा है।

कार्य—मारण, उच्चाटन आदि चरकार्य इसमें करने चाहियें।

'शिव स्वरोदय' के मत में इसका स्थान नाभि के मूल में स्थित है, परन्तु यह ठीक नहीं। 'कल्याण साधनाङ्क' आदि अन्य ग्रन्थावलोकन से ज्ञात होता है कि इस चक्र का स्थान हृदय से लेकर भौंहों के बीच तक वायु मण्डल है। प्राणों को स्थिर करके हृदय में इसका चिंतन करने से ऐसा अनुभव होता है कि - "मैं वायु हूँ। प्रत्येक वस्तु में मैं आकर्षण निष्कर्षण शक्ति हूँ। मैं ही गतिस्वरूप सब गतियों की कला, सबका श्वासोच्छ्वास बन कर जीव दान कर रहा हूँ"। इसका साधक जहाँ हवा न हो वहाँ भी रह सकता है। वह न जल से गलता है, न आग से जलता है, न वायु से सूखता है और न बुढापा और मौत ही उसका स्पर्श कर पाती है।

रोग नाश— इसके धारण से पित्तज, श्लेष्मज रोगनाश हो जाते हैं।

उपरोक्त नियम ४ के अनुसार वायु के अर्ध भाग से धावन (दौड़ना) आवे से पसरन, उछलन, चलन एवं सकोचन ये चार पैदा हुए, परन्तु शिव स्वरोदय' उछलन की अपेक्षा गन्ध मानता है, जिससे मैं सहमत नहीं हूँ।

आकाश तत्त्व विशुद्ध चक्र अर्थात् कण्ठ में स्थित है। अंग्रेजी में इसको (*Carotid Plexus*) कहते हैं। यह चक्र 'जन:' लोक का प्रतिनिधि है।

इसका रङ्ग नीला, आकृति अंडाकृति है। किसी किसी के मत में यह निराकार भी आकाश तत्त्व है। इसका विशेषगुण शब्द ज्ञानेन्द्रिय कान और कर्मेन्द्रिय वाणी है। जिसके वर्ण, आकार स्वाद, चाल ये प्रकट न हों ऐसा ही आकाश तत्त्व मोक्षदाता एवं सांसारिक कामों में निष्फलता का द्योतक है। आकाशतत्त्व दाहिने स्वर में होने से नीला रङ्ग देता है, व चन्द्र स्वर में काला रङ्ग प्रकट करता है। इसी प्रकार अग्नि का दाहिने स्वर में लाल रङ्ग व चन्द्र स्वर में गर्म तपाये हुए लोहे के समान होगा। 'शिव स्वरोदय' में आकाश तत्त्व का वर्ण चित्र विचित्र और आकार बिन्दुओं का–सा है। 'कल्याण योगाङ्क' पृष्ठ ८१० के अनुसार तत्त्वों के उपर्युक्त रङ्गों का समर्थन होता है। ध्यान विधि पूर्ववत् है। ह बीज का जप करते हुए निरन्तर चित्रविचित्र रङ्ग वाले आकाश का ध्यान करे। इससे तीनों कालों का ज्ञान ऐश्वर्य, अणिमादि अष्ट सिद्धियां प्राप्त होती हैं।

ह बीज गगन ध्यायेत् निराकार बहुप्रभम्।
ज्ञानं त्रिकालविषयमैश्वर्यमणिमादिकम् ॥

श्वास की गति —यह तत्त्व केवल घूम घूम कर भवर के समान चलता है। दर्पण पर श्वास छोड़ने से बिन्दुओं की आकृति दिखाई पड़ती है।

स्वाद— इसका स्वाद पं० तडित्कान्त झा ने कड़ुवा लिखा है। परन्तु 'शिवस्वरोदय' में कटुक— मिर्च जैसा— लिखा है।

श्वास का परिमाण— यह २० अङ्गुल तथा ४ मिनट तक चलता है।

कई इसकी गति बिलकुल न होना बताते हैं। पं० तडित्कान्त झा ने २० अङ्गुल तक गति बतलाई है। 'शिवस्वरोदय' में गति के विषय में कुछ नहीं लिखा श्री चरणदासजी पूर्ण चलना बतलाते हैं। एक और हस्तलिखित पुस्तक में तीन

अङ्गुल तक चलना बतलाया है, परन्तु वास्तव में यह २० अङ्गुल तक चलता है। यह बात प्रमाणित व अनुभूत है। प्रमाणित इस तरह से है कि प० तडित्कान्तभा तो इसकी गति २० अङ्गुल बतलाते ही हैं और श्री चरणदासजी इसका पूर्ण चलना बतलाते हैं। पूर्ण चलना खूब जोर से चलना होता है अर्थात् २० अङ्गुल कम से कम। इस प्रकार इस पर मेरे अनुभव की मोहर लग गई यानि पूर्ण विश्वास होगया कि यह २० अङ्गुल चलता है। अत: इसके विरुद्ध किसी योगी का प्रमाण हो तो बतलाने की कृपा करें।

श्री चरण दासजी ने 'ज्ञान स्वरोदय' में लिखा है:—

"स्वर दोनों पूर्ण चले बाहर ना प्रकाश ;
श्याम रङ्ग है तासुको सोई तत्त्व आकाश" ॥

आकाश तत्त्व में नासिका से बहुत जोर से हवा निकलती जान पड़ती है, परन्तु स्वर शुद्ध नहीं होता, अर्थात् कभी एक नसकोरे से कभी दूसरे नसकोरे से हवा धीरे धीरे चलती है और आशंका होती है कि कहीं सुषुम्ना नाड़ी न चलने लग जाय। इस तत्त्व में आनन्द आता है। इसके जानने का तरीका यह है कि यह तत्त्व नीचे से चलता है। कम से कम मुझे तो इसका ज्ञान हमेशा आसानी से हो जाता है।

इस तत्त्व में भगवद्भजन के अतिरिक्त अन्य कार्य नहीं करना चाहिये। 'शिव स्वरोदय' के अनुसार आकाश तत्त्व मस्तक, और 'कल्याण साधनांक' (पृष्ठ ३१०) के अनुसार यह भौंहों के बीच से मूर्द्धापर्यन्त होता है, क्योंकि आकाश रूप कार्य भगवान् सदा शिव शुद्ध स्फटिक के समान श्वेत वर्ण हैं। जटा पर चन्द्रमा, पांच मुख, दस हाथ और तीन आँखें हैं तथा पार्वती द्वारा आलिंगित होकर वरदान दे रहे हैं। इसका ध्यान करने से ऐसा अनुभव होता है कि— "मैं

आकाश हूँ। मेरा स्वरूप अनन्त है। देवकाल मुझ से कल्पित है। न मेरे भीतर कुछ है और न बाहर"। ऐसा सिद्ध होने पर मोक्ष द्वार खुल जाता है।

रोग नाश— आकाश धारणा से त्रिदोष-जनित सम्पूर्ण रोग नष्ट हो जाते हैं। उपर्युक्त नियम ४ के अनुसार आकाश तत्त्व के अर्ध भाग से लोभ और दूसरे आधे से मत्सर, काम, क्रोध, मोह ये चार उत्पन्न हुए। चरणदासजी ने भी इसका पूर्ण समर्थन किया है। 'सन्ध्या विज्ञान' में स्वामी अचलदासजी ने लोभ और मत्सर की जगह शोक और भय लिखा है तथा 'शिव स्वरोदय' में इस प्रकार लिखा है:—

राग द्वेषस्तथा लज्जा भयोमोहश्च पचमः ।
नभ पञ्चगुणा प्रोक्तं ब्रह्मज्ञानेन भाषितम् ॥

अर्थात् राग, द्वेष, लज्जा, भय मोह– ये पांच गुण आकाश तत्त्व के हैं।

इन धारणाओं का साधारण क्रम यह है कि पहले पृथ्वी मण्डल का चिन्तन करके जल मण्डल में अपने को विलीन कर दे। जल मण्डल को अग्नि मण्डल में अग्नि को वायु में और वायु को आकाश में विलीन कर दे। इस क्रम से कार्य को कारण में विलीन करते हुए सब को परम कारण सदा शिव में स्थापित करे। अनुभवी योगियों का ऐसा उपदेश है कि प्रत्येक मण्डल का चिन्तन करते समय प्रणव (ॐ) के द्वारा तीन तीन प्राणायाम कर के कार्य मण्डल को कारण मडल में हवन करदे– 'ॐ अमुक मण्डल अमुक मण्डले जुहोमि स्वाहा'।

पृथ्वी तत्त्व में बुद्धि में शान्ति नेक काम की सूझ, परमात्मा का स्मरण, मधुर व सुगन्धित वस्तु पर रुचि होती है। इसी प्रकार जल तत्त्व में भी जल तत्त्व के

तत्त्वों का प्रभाव

समान ही प्रभाव होता है। अग्नि तत्त्व में आलस्य, जम्हाई सोने की रुचि, पेट भारी होना, आँखों में सुरखी, बदन में अङ्गड़ाई और गरम

मालूम होती है। नाडी में तेजी, मुख खुश्क, चित्त में मलिनता यानि सोच फिक्र होगा। सोचने की शक्ति कम होगी, अर्थात् किसी मामले की नई व बड़ी तदबीर सोचना मुश्किल है। ईश्वर-स्मरण में मन नहीं लगेगा। भूख, प्यास लगेगी। वायु तत्त्व में कसरत आदि मेहनती कार्यों का आरम्भ करना उचित है। इसमें शरीर का कोई भाग अपने आप हरकत करने लगता है, जैसे पांव आदि का स्वय हिलना, चाहे स्वयं को इसका ध्यान न हो। क्रोध भी आता है। काम करने की उमङ्ग अवश्य होती है, परन्तु परिणाम सोचने की बुद्धि उत्पन्न नहीं होती। खट्टी चीजों में रुचि, हसी मजाक पर तबियत एव अपघात इसी तत्त्व में होता है। याद किया हुआ खयाल से उतर जाता है। बहस में हार होती है।

६ मास तक भिन्न २ उपर्युक्त रीतियों से नित्यप्रति अभ्यास करने से तत्त्व ज्ञान होने लग जाता है।

—:o:—

तत्त्व का नाम	स्थान (चक्र)	आकृति	गुण	रङ्ग	स्वाद	बीज	श्वास की गति	श्वास का परिमाण	समय
पृथ्वी	मूलाधार	चतुष्कोण	गन्ध	पीला	मधुर	ल	नसकोरे के मध्य भाग से	१२ अंगुल	५० पल
जल	स्वाधिष्ठान	अर्धचन्द्राकार	रस	श्वेत	कसैला	व	नसकोरे के निचले भाग से	१६ अंगुल	४० ,,
अग्नि	मणिपूर	त्रिकोण	रूप	लाल	तीखा	रं	नसकोरे के ऊपर के भाग से	४ अंगुल	३० ,,
वायु	अनाहत	षट्कोण व गोल	स्पर्श	हरा या मेघवर्ण	खट्टा	य	नसकोरे के पसवाड़ों से	८ अंगुल	२० ,,
आकाश	विशुद्ध	अंडाकार, गोल या विन्दु	शब्द	रङ्ग-विरङ्गा	कडुवा	ह	आवर्त	२० अंगुल	१० ,,

अभ्यासी के तत्त्व जल व पृथ्वी ज्यादा रहते हैं; क्योंकि उनमें ज्यादा शांति व चित्त स्थिर रहता है जो अभ्यास का कारण है व बुरी वासनाओं को नष्ट करने वाले हैं।

सप्तम प्रकाश

स्वर परिवर्तन विधि और लाभ

स्वर का सम्बन्ध नाड़ियों से है। अत: स्वर परिवर्तन करना नाड़ियों का परिवर्तन करना है, और इसके लिये उनको रोकना जरूरी है। अतः जिस नाड़ी को चलाना हो उसको खुली छोड़ देवें और जिसको बन्द करना चाहें उसको बन्द कर देवें। नाड़ियों को रोकना साधारण काम नहीं। अन्य पुस्तकों में इस सम्बन्ध में बहुत ही थोड़ा लिखा गया है। पण्डित तडित्कान्त झा व अन्य पण्डितों का यही कथन है कि यदि इडा नाडी को चलाना हो तो पिंगला की तरफ करवट लेकर लेट जाना चाहिए। *इससे थोड़ी देर में इडा स्वयमेव चलने लग जायगी और* यदि पिंगला चलानी हो तो इडा की तरफ करवट लेकर लेट जाना चाहिये। साधारण रूप से इस ढंग से काम चल जाता है; परन्तु कभी कभी देखने में आया है कि नाड़ी इस ढंग से नहीं बदलती है तो उस समय इसका सामना करना सिंह का सा सामना करना है। अत इसके परिवर्तन करने के दूसरे उपाय नीचे लिखे जाते हैं। ये एक के उपरान्त दूसरा करने के हैं।

सोकर स्वर बन्द करना

१. बैठे २—

स्वर बदलने की क्रियाएं

(१) जिस स्वर को चलाना हो उस हिस्से के अंग, हाथ, आदि, को शिथिल कर दें, और जिधर का स्वर रोकना हो उस तरफ के हाथ की हथेली को जमीन पर रखकर उधर के हिस्से को दबावें।

(२) जिस तरफ का स्वर बन्द करना चाहें उस तरफ के घुटने को काँख में लगा कर जोर देने से दूसरी ओर का स्वर स्वयमेव चलने लग जायेगा।

२. बन्द करने वाले स्वर के पसवाड़े लेटे लेटे

(३) जैसा ऊपर लिखा है जिधर का स्वर चलाना हो उधर के हिस्से को ऊपर रखें और जिधर का बन्ध करना हो उस करवट लेट जावें।

(४) कोहनी को नाभि की सीध में कमर के ऊपर पसलियों के नीचे थोथी जगह में कुक्षि (काँख) से सीधी लाइन खींचते हुए नाभि की लाइन पर लम्ब (Perpendicular) डालें व समकोण बनाते हुए थोथी जगह में कोहनी को दबायें। जैसे—
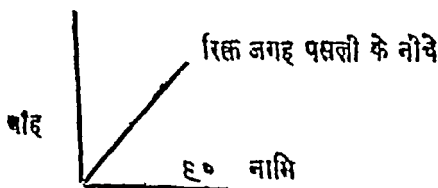
कोहनी, पसलियों के निम्न स्थान में जहाँ नब्बे डिगरी का कोण (Angle) बनता है, रक्खें। इससे जिधर का स्वर बन्ध करना हो सारा हिस्सा दब जायगा और ऊपर का स्वर चलने लग जायगा।

(५) बन्ध किये जाने वाले स्वर की तरफ लेटे लेटे ६ इन्च (यानी १२ अंगुल) सिर ऊंचा उठा हुआ रक्खें और कोहनी को पसली के नीचे दबाकर रखें। कन्धा जमीन से लगा रहे।

(६) कुछ देर तक सिर आकाश और पृथ्वी की ओर जल्दी जल्दी उठावें और नीचे करें ।

(७) नाक के ऊपर के हिस्से को अच्छी तरह साफ कर उसमें से वायु (श्वास) जोर जोर से बाहर फेंकना चाहिए और नीचे के नसकोरे में से श्वास सर्राटे के साथ अन्दर खींचना चाहिये ।

(८) ऊपर के नसकोरे को पकड़ कर चौड़ा करें और उसमें आसानी से जहां तक अंगुली प्रवेश कर सके करें और निकालें, इससे अवश्य सफलता मिलेगी ।

परन्तु स्वर बदलते ही स्थान छोड़ नहीं देना चाहिए । कुछ देर तक वहीं लेटे रहना चाहिए जिससे पूर्ण रूप से इष्ट स्वर चलने लग जाय । यदि जल्दी की जायेगी तो इष्ट स्वर प्राप्ति न होगी ।

(९) रात्रि को निद्रा के समय श्वास को प्रतिबन्ध में रखने के लिये स्वर बदलना आवश्यक होता है, यदि सारी रात एक ही स्वर रखने का अभ्यास न हो । करवट बदलने से साधारणतया स्वर बदल जाता है । परन्तु यदि ऐसा न हो तो, शय्या छोड़ कर जल पीकर लघुशंका (पेशाब) कर लेने से करवट के द्वारा स्वर बदलना सरल हो जायगा । यह अनुभव की हुई विधि है । इसका कारण स्पष्टत यह है कि शय्या छोड़ने तथा उक्त क्रिया के द्वारा नाड़ियों तथा धमनियों पर प्रतिबन्ध हट गया तथा वे स्वतन्त्र होकर प्रकृतिस्थ हो गईं । जल से उनमें तरलता आ गई क्योंकि शरीर में जल का भाग प्रधान अंश में होता है ।

स्वर बदलने के और भी आसान तरीके ये हैं—

१. नाक में पुरानी रुई की गोला जिस पर कपड़ा सिला हुआ हो, रक्खें। परन्तु शिरोरोग में यह गोली दबाकर स्वर कभी भी नहीं बदलना चाहिये।

२. दण्ड, बैठक, दौड़ व कठोर श्रम करने से भी स्वर परिवर्तन हो सकता है।

स्वर परिवर्तन कार्य विशेष के समय ही करना चाहिये। हर समय करने की जरूरत नहीं। किसी किसी का मत है कि हर समय स्वर बदलने से शक्ति बढ़ती है। परन्तु हमेशा ऐसा नहीं करना चाहिये, क्योंकि वह अप्राकृतिक कार्य होगा। दबाव से स्वानुकूल स्वर कर लेने पर उतना फल प्राप्त नहीं होता जितना प्राकृतिक स्वर के रहते होता है, क्योंकि नाड़ी के हठ ग्रहण करने पर कार्य आसानी से सिद्ध नहीं होता। अतः प्रातःकाल तथा भोजन के समय के सिवा कभी नाड़ी परिवर्तन नहीं करना चाहिए।

धक्के से बदले हुए स्वर का फल

प्रातःकाल (सूर्योदय) में चाहे नाड़ी कितनी ही आपके विपरीत रहे वह तिथि के अनुसार अवश्य बदल लेनी चाहिये, क्योंकि सूर्योदय के प्रारम्भ से १ घन्टे तक का समय स्वरयोगी के लिये सबसे अमूल्य बताया गया है। इससे भविष्यज्ञान होता है और २४ घन्टे का समय इसी एक घन्टे के अनुकूल चलता है। शेष कार्यों में यदि जल्दी करनी हो तो उसी तरफ के पैर व हाथ बढ़ा कर कार्य करना चाहिये, सिद्धि अवश्य होगी।

प्रथम नं० (१) तथा (२) के समान तरीके कुर्सी पर बैठे बैठे किये जा सकते हैं, जैसे—

१. कुर्सी के ऊपर के डण्डे से चलते हुए स्वर के तरफ की कांख को दबाओ।

२. नं० २ की तरह चलते स्वर की ओर की पसली के नीचे उसी तरफ के हत्थे से दबाओ।

उपर्युक्त प्रकारों में घुटने तथा कोहनी का काम कुर्सी के डण्डों से लिया जाता है।

सबसे विशेष एक बात जो स्वर साधकों को ध्यान में रखनी चाहिये वह यह है कि वर्ष के प्रारम्भ होने वाले सूर्योदय से एक मिनट तक के समय से साल भर का फल निकाला जा सकता है क्योंकि यह पहला मिनट इस विषय की जानकारी में अमूल्य होता है। यदि इतने समय में पूर्ण ज्ञान न हो सके तो सूर्योदय से एक घन्टे तक यत्न चालू रखना चाहिए।

सूर्योदय काल के पहले लक्षण का मूल्य

"स्वर से दिव्य ज्ञान" नामक ग्रन्थ के लेखक श्री पं० नारायण प्रसाद तिवाड़ी का कथन है कि "घी खाने से वामस्वर और शहद खाने से दक्षिण स्वर चलता है।" पाठक स्वयं अनुभव कर इसे अपनावें।

घी, शहद खाने से स्वर बदलना
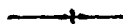
अष्टम प्रकाश

भिन्न भिन्न स्वरों में भिन्न भिन्न कार्य और मंत्र–बल सिद्धि

कतिपय पुस्तकों में कौन सा कार्य किस स्वर में करना चाहिए यह बतलाने के अतिरिक्त, कुछ कामों के करने के लिये चन्द्र, सूर्य दोनों स्वर लिख दिये हैं। अतः प० तडित्कान्त झा की दी हुई तालिका नीचे लिखी जाती है और इसमें यह भी बताया गया है कि कौन कौन से तत्व व वारों में ज्यादा सिद्धि होगी—

वामस्वर पृथ्वी, जल या दोनों तत्व तथा सोम, बुध, गुरु, शुक्रवार में—

१. शान्तिकर्म
२. पौष्टिककर्म
३ मैत्रीकर्म
४. प्रभु दर्शन
५. योगाभ्यास
६. दिव्यौषधि सेवन
७ रसायन कर्म
८ आभूषण पहनना
९ नूतन वस्त्र पहनना
११ दान
१२ आश्रम प्रवेश
१३ मकान बनवाना
१४ जलाशय बनवाना
१५ बाग बगीचा लगवाना
१६ यज्ञ करना
१७ बधु-बान्धव मित्रादि से मिलना
१८ ग्राम या शहर बसाना
१९ दूर गमन (यदि दक्षिण या पश्चिम दिशा में)

१० पाणि-ग्रहण　　२० पानी पीना, पेशाब करना

दक्षिण स्वर, पृथ्वी जल, या दोनों तत्त्व तथा मंगल, शनि या रविवार में—

१ कठिन और क्रूर क्रिया	११ युद्ध
२ शास्त्राभ्यास	१२ पशु पक्षी का क्रय विक्रय
३ शास्त्राभ्यास दीक्षादि	१३ काटना छाँटना
४ संगीत	१४ कठोर योगाभ्यास
५ सवारी	१५ राज दर्शन
६ व्यायाम	१६ विवाद
७ नौकारोहण	१७ किसी के समीप जाना
८ यन्त्र तंत्र रचना	१८ स्नान
६ पहाड़ या दुर्ग पर चढ़ना	१६ भोजन
१० विषय भोग	२० पत्रादि लेखन

ध्यान-धारणादि परमात्मचिन्तन सुषुम्णा में करे इसमें तत्त्व और वार का असर नहीं पड़ता।

उपर्युक्त कामों के अतिरिक्त वाम स्वर में अन्य कार्य भी "शिव स्वरोदय" के अनुसार किये जा सकते हैं, यथा—

प्रवेश, राज्याभिषेक, पीड़ा शोक-विषाद-ज्वर-मूर्छा-निराकरण, स्वजन स्वामी सम्मिलन, धान्यकाष्ठ संग्रह, स्त्रियों के दन्त आदि आभूषण धारण, गुरु पूजन और विषदूरी-करण धारण, प्रतिष्ठा, तीर्थ यात्रा, दक्षिण पश्चिम गमन, कीमियागिरी।

उपरोक्त तालिकाके अतिरिक्त 'शिव स्वरोदय' में कठोर व चरकर्म, मारण, उच्चाटन आदि विधाओंमें, स्त्री संग, वेश्यागमन, महानौका आदि में चढ़ना, भ्रष्टकार्य

पिंगलाके कार्य

मदिरा पान, वीरमन्त्र आदि की उपासना, विह्वलपना, देशका नाश, वैरियोंको विषदेनेमें गमन, शिकार, पशु बेचना, ईंट, काठ, पत्थर, रत्न इनको घिसना तथा फोड़ना, गतिका अभ्यास, यन्त्र तन्त्र, किला वा पर्वत पर चढना, जुआ, चोरी, हाथी, घोड़ा, रथ, इन वाहनों का साधन करना, षट्कर्मोंकी सिद्धि, यक्षिणी, यक्ष, वेताल, विष आदि का रोकना, गधा, ऊँट, भैंसा, हाथी, घोडे पर चढना, नदीके जलमें तैरना, औषध लेना, लिपि लिखना, मोहन, स्तमन, विद्वेष, वशीकरण, प्रेरण, आकर्षण, क्रोध, दान, खरीदना, बेचना हाथ में तलवार लेना, वैरी के साथ युद्ध, भोग, राजदर्शन, भोजन, स्नान, क्रूर व्यवहार, अग्नि प्रदीप्त करना पिंगलाके कार्य लिखे हैं।

राजनीति वार्ता, गुप्तचर कार्य, भेद निकालना, दौत्य-कार्य कठिन व क्रूर विधाओं का पढना तथा पढाना, अनेक पदार्थों का भोग, स्त्री वशीकरण, सेवा कर्म, भूत प्रेतादि साधना सरकार में अर्जी देना, विष भूत उतारना, रोगी को औषध देना, नया चौपड़ा लिखना, सट्टाकरना, द्रव्य कर्ज लेना, पूर्वोत्तर गमन, पूर्व दक्षिण गमन, नदी पार करना, ऊँचा चढना, कुश्ती लड़ना, कर्जा देना, बीमारी का इलाज करना, द्यूत क्रीड़ा में दाहिने स्वरकी प्रमुखता बताई गई है।

उक्त तालिकाओं के विषय में मेरे अनुभव इस प्रकार हैं। यह

निर्विवाद सिद्ध है कि शान्त एवं स्थिर कर्म यथा — घर बनाना, विवाह करना, प्रभु दर्शन करना आदि में चन्द्र नाडी पूर्ण फलप्रदा है। यदि पृथ्वी और जलतत्व वह रहे हों और गुरु, शुक्र और बुधवार हो तो यह सोने में सुगन्ध है। आकाश तत्व दोनों नाडियों में अल्प फलदायक है और कठिन व खर कर्म (यथा शस्त्राभ्यास, युद्ध व्यायाम आदि) दाहिने स्वर में सफल होते हैं। यदि इस स्वर में मङ्गल, शनि और रवि हो तो और भी अधिक सफलता मिलती है।

जो सज्जन किसी भी ग्रन्थ में एक ही काम दोनों नाडियों में लिखा हुआ देखें तो उन्हें अपनी बुद्धि से यह तय करना होगा कि अमुक कार्य कठोर है या शान्त और यदि कठोर हो तो दाहिने स्वर में तथा शान्त हो तो बायें स्वर में करना चाहिये। उपर्युक्त कामों के सिवाय बाम स्वर में अन्य कार्य भी 'शिवस्वरोदय' के अनुसार किये जा सकते हैं यथा —

ठंडा काम, नूतन ग्रन्थ लेखन, मन्त्रि मण्डल-निर्माण एवं वैधानिक कार्यारम्भ में व पश्चिमोत्तर तथा दक्षिण पश्चिम कोण के गमन में मेरी सम्मति में वामस्वर का होना परमावश्यक है। हृदय की आकृति को देखने से ज्ञात होगा कि इसकी आकृति में इसका दाहिना भाग नीचे पीछे दाहिनी ओर झुका हुआ है। बायां हिस्सा ऊपर बाईं ओर सामने को झुका हुआ है। अतः दाहिने स्वर की दिशा उत्तर पूर्व है, क्योंकि पूर्व व उत्तर में हृदय का बायां हिस्सा बढ़ा हुआ है और सामने को भी बढ़ा हुआ है जो चन्द्रमा का स्थान है यानि ठण्डा, अतः उधर जाने को गर्मी चाहिये जो दाहिने स्वर में है। इसी प्रकार बांये का हाल जानो।

इस तरह से वाणिज्य, क्रय विक्रय, सवारी विष आदि के उतारने में "शिव-स्वरोदय" दोनों नाड़ियां ठीक बतलाता है परन्तु वास्तवमें व्यापार विषयमें यह

देखना है कि दाहिना स्वर ठीक रहता है या बांया ? कार्यका हेतु देखकर दाहिने बायें स्वरमें कार्य करना चाहिये और अन्य कार्यों में जहां शंका उत्पन्न हो वहां कार्यकी कठोरता या सरलता देखकर निर्णय करना चाहिये। क्योंकि प्राय मेरे देखनेमें आया है कि बांये स्वरमें भी उन कार्योंकी सिद्धि किसी सीमातक होती है जो दाहिने स्वरमें लिखे हैं, पर भयकर काम सदा दाहिने स्वर में करने चाहिये। सन्देहास्पद कार्य में बुद्धिबलसे यथा संभव चर, कठोर, क्रूर, नीच कर्म दाहिने स्वरमें और इसके विपरीत बांयें स्वरमें करने चाहिये। यह एक अनुकरणीय साधारण सा नियम है। प्रधानता इस नियमकी रखनी चाहिये कि चरकाम पिंगला नाड़ीमें और स्थिर काम इड़ा नाड़ीमें होना चाहिये। यथा—अश्व, गर्दभ, हाथी आरोहणका दांयें और बांयें दोनों स्वरमें विधान है, परन्तु यह चर कार्य है और कठोर भी है अत बांयें स्वरमें न होकर दांयें स्वरमें होने चाहिये। सारांश यह है कि सवारी आरोहण सर्वदा सूर्य स्वरमें करना चाहिये।

गृह प्रवेश दाहिने स्वर में न करना चाहिये, क्योंकि एक बार मैंने अपने *Transfer* (स्थानान्तर) के समय राजगढ से सूरपुरा जाकर दाहिने स्वर में गृह प्रवेश किया, जिससे मैं वहां केवल दो मास भी मुश्किल से ठहर पाया। अत: गृह प्रवेश हमेशा वामस्वर में करना समीचीन होगा।

पूर्व लिखित कार्य जो भिन्न भिन्न स्वरों में बतलाये गये हैं उनमें से अधिकांश को मैंने अपने दैनिक एवं व्यावहारिक जीवन में अपनाकर अनुभव प्राप्त किया है मेरा विशेष अनुभव कि वे बिल्कुल ठीक हैं और उनके अनुसार फल प्राप्ति के अनन्तर आत्मानन्द अनुभव कर हार्दिक विजयोल्लास की भावना स्फुरित होती है। सन् १९४२ में मेरी धर्मपत्नी ने मंथरज्वर से ग्रसित हो २८ दिन निराहार निकाल

दिये। मन्यरज्वर दोष निराकरण होने पर भी मलेरियाने उसका पिंड न छोड़ा। आखिर वैद्य और डाक्टरों से विचार विमर्श किया और वैद्यके मतानुसार मैं कुनैन की एक मात्रा देनेको तैयार हुआ। जबकि डाक्टरों की राय इसके विपक्षमें थी और डाक्टरों ने इसे खतरे की घंटी बताया था। परन्तु जिस समय मेरा और मेरी धर्म पत्नी दोनोंका दाहिना स्वर चलने लगा तो प्रातः काल ६ बजे से १२ बजेके बीच में मैंने कुनैनकी ४ मात्रा देदी। इसका महान् चमत्कार यह पाया कि बुखार अपने किरायेके मकान को खाली करगया और किसी प्रकारके खतरेकी आशंका न रही। मेरी इस स्वर बल से चिकित्साका हाल सुनकर वैद्यगण अचम्भित हुए और भविष्य में स्वरके अनुकूल औषधोपचार करने की इच्छा प्रकट की। सारांश यह है कि ईश्वरप्रदत्त इस स्वरके सहयोगसे अनेक शारीरिक व्याधियोंके ऊपर हम सहज ही विजय पा सकते हैं।

मैं मन्त्रबल चिकित्सामें भी आस्था रखता हूँ। इस कार्य में दाहिने स्वरकी परम अपेक्षा रहती है। इसका प्रयोग एक बार मैंने पूज्य दादीजी और अपनी धर्म पत्नी पर किया जो मलेरिया-ज्वराक्रान्त थीं। उन दोनों की स्थिति देख प्रायः सभीने कुनैन देने की सलाह दी, जब कि मैं बगैर कुनैन दिये मलेरियाको दबाने का उपाय सोच रहा था। सहसा मुझे अपने आत्मबल, मन्त्र और स्वर पर भरोसा याद आने पर मैंने उन्हें प्रयोग में लाना उचित समझा। मैंने एक नीली तथा एक पीली बोतलके पानी में सूर्य रश्मियोंसे एक औषधका निर्माण किया और सूर्यनाड़ी में मन्त्र चिकित्सा की तो उसी दिन मलेरिया भाग गया। अपने सफल प्रयोगको प्रत्यक्ष देख पीलिया रोग ग्रस्त अपने एक चपरासी को सूर्य नाड़ी में मन्त्र द्वारा ठीक किया। परन्तु यह ध्यान रहे कि मन्त्र चिकित्सामें आदमीको अपनी बहुत-सी शक्ति व्यय करनी पड़ती है और जरा कष्ट

स्वर और मन्त्र-बलका सान्निध्य

भी उठाना पड़ता है। क्योंकि इस स्थितिकी सफलता प्राप्तिके लिये बहुत शक्तिसाध्य नियम का परिपालन करना जरूरी होजाता है। इन सबमें आत्मशक्ति और विश्वास जितना ही प्रचुर होगा, उतना ही जल्दी कार्य सिद्ध होगा। सन् १९४५ की बात है हमारे घर में विवाह था। मेरे मित्र पं० भीखारामजी, अध्यापक, स्टेट स्कूल सरदार-शहर, हमारे यहाँ वैवाहिक कार्योंमें सहयोग दे रहे थे। उसी समय उनके घरसे एक लड़की चिल्लाते हुए बच्चेको लेकर आई और कहने लगी कि–" इसे बिच्छू ने काट खाया है"। उसी समय मैंने अपने स्वरको संभाला और जाना कि इस समय पूर्ण सूर्य स्वर चल रहा है। मैंने अपने आत्म–बल से आगे बढ़ कर उसकी मन्त्र चिकित्सा प्रारम्भ करदी। थोड़ी देर में रोता हुआ वह बालक हँसता हुआ घर चला गया। कहनेका तात्पर्य यह है कि इस प्रकारकी चिकित्सा भी अपना महत्त्व रखती है और यदि इसे सविधि किया जाय तो विस्मयकारी फल देने वाली होती है। विस्तार भयसे अन्य उदाहरणों का उल्लेख असमीचीन होगा।

कतिपय दाहिने स्वरके काम बांये स्वरमें और बायें स्वर के काम दाहिने स्वर में भी सिद्ध होते देखे गये हैं और मैंने स्वयं भी अनुभव किया है। 'शिव स्वरोदय' *स्वरों में व्यतिक्रम* में भी लिखा है कि जिस समय जो स्वर चलता हो उस समय वही पैर, हाथ आगे बढाकर जावे तो प्रत्येक कार्यमें किसी सीमातक सिद्धि प्राप्त होती है यथा –

चन्द्रः समपदः कार्यो रविस्तु विषमः सदा।
पूर्णपाद पुरस्कृत्य यात्रा भवति सिद्धिदा॥

इस नियमको विशेष परिस्थितिमें ही बरतना चाहिये, क्योंकि इसमें कभी कभी सिद्धि नहीं भी मिलती। इसका सबसे अधिक वैज्ञानिक तथ्य यह है कि जीव स्वर

की तरफका शारीरिक हिस्सा नाड़ियोंके निरन्तर प्रवहण होनेसे सशक्त, सबल और चैतन्य रहेगा। उसके पहले उठाने से कार्य सम्पादनमें तत्परता रहेगी और कार्य शीघ्र होगा। अत हर हालतमें वही हाथ पैर काममें लाकर कार्य करना चाहिये जो स्वर चल रहा हो, परन्तु वास्तव में देखा जाय तो पूर्ण सिद्धि उसी स्वरमें मिलती है जिस स्वरका जिस कार्य में होना विहित है।

भोजन दाहिने स्वरमें किया जाता है, इससे वैज्ञानिक लाभ यह है कि इस स्वरमें किया हुआ भोजन शीघ्र पचता है एवं तृप्ति होती है। भोजनमें कोई कमी प्रतीत नहीं होती चाहे देखने वालेको अच्छा न लगे। भोजनावधि तक किसी प्रकार की चिढ, अशान्ति, बुरा विचार, अड़चन, या बाधा आदि नहीं आती एवं पूर्ण रस बनता है। यदि इसके विपरीत, उपर्युक्त स्थितिमें चन्द्र स्वर हो तो अड़चन, अशान्ति, बुरा विचार या बाधा अवश्य होगी। यह एक वैज्ञानिक तथ्य है। यदि आप इसे सत्य न मानें तो अपने जीवन में परीक्षा करलें। आप अवश्य चमत्कारी फल देखेंगे। जैसे चन्द्रस्वर में भोजन प्रारम्भ करते ही समाचार मिलेगा कि कोई विशेष व्यक्ति आप से मिलने की प्रतीक्षामें है, जिससे मिलना आपके लिये परमावश्यक है। यदि थोड़ी देर के लिए यह मान भी लिया जाय कि आप भोजन करते हुए न उठें, परन्तु आये हुए व्यक्तिकी स्थितिसे एक प्रकार से सारे कार्य में शीघ्रता और अशान्ति किसी न किसी अशमें अवश्य होगी। इससे आपका खाया हुआ अन्न लाभप्रद व आनन्दप्रद न होकर विरुद्ध रस पैदा करेगा। इसका निर्णय आप किसी वैद्य या डाक्टर से करा सकते हैं, कि क्या इस प्रकार किया हुआ भोजन *natural course* ले लेगा? क्या आपकी उसपर पूर्ववत् रुचि रहेगी? कदापि नहीं। चन्द्र स्वरमें भोजन करनेसे वह अरुचिकर, नीरस, गरिष्ठ, कुस्वादु, क्रोधोत्पादक और दुर्घटनोत्पादक ही होगा। देखनेमें सुन्दर होने पर भी

भोजन

हमारे मनको रुचिकर न होगा। रुचिकर न होने से वह दूसरे कारणों से कब्ज, पेटका दर्द, श्वास, काम, हृदयस्पन्दन, आतका रुकजाना, यकृत् प्लीहा का बढ जाना, अर्श, सिर दर्द, पाण्डु रोग और खून की कमी आदि आदि बीमारियों का उत्पादक होगा। इसी प्रकार जिस स्वरमें जो बात कही गई है उससे विरुद्ध स्वर हो तो कि॰ प्रकार का विघ्न होगा यह उस बात पर निर्भर है। मैं यहीं विस्तार भयसे उपर्युक्त प्रकार की प्रत्येक वस्तुपर विवेचन न कर यह काम मर्मज्ञ पाठकों पर ही छोड़देता हूँ भविष्यत् में यदि पाठक इस बात की विशेष जानकारी प्राप्त करना चाहेंगे तो अगले संस्करण में इसका विशद विवेचन करूंगा।

कभी कभी दोपहर में वामस्वर की स्थिति में बड़े जोर की भूख लग जाती है। यदि उस समय भोजन कर लिया जाय तो आलस्यकारी ही होगा और आपकी दैनिक कार्यप्रणाली का अवरोधक भी होगा। विशेष करके स्वर साधक को कभी मिठाई, वड़े आदि न खाने चाहिये। यदि खाना ही पड़े तो केवल दाहिने स्वर की स्थिति में, क्योंकि उसकी विद्यमानता में जठराग्नि प्रबल होती है और अति कठोर वस्तु भी सुपाच्य हो सकती है।

पत्र लेखन में दक्षिण स्वर ठीक है। इससे लाभ यह होगा कि मस्तिष्क में नूतन विचारों की उत्पत्ति अपने आप होगी और कोई बात ऐसी नहीं लिखी जायगी जो कालान्तर में लेखक के विपरीत सिद्ध हो। ऐसे स्वर में लिखी हुई बात पक्की और कड़े-से-कड़ा निर्णय भी न्यायसंगत होगा। उसे कभी उलटना न पड़ेगा। इसके साथ यह भी विशेषता है कि लिखते समय बड़ा आनन्द आता है और नई नई सूझ पैदा होती है।

पत्र-लेखन

दाहिने स्वर में राजनीति सम्बन्धी वार्ता में बड़ी सफलता मिलती है, क्योंकि

उस समय बात करने, विचारने और गहन से गहन विषय के समझने में कोई कमी नहीं रहती। ऐसा जान पड़ता है कि सरस्वती का वरद हस्त हमारे पर है और हम आसानी से सारा काम सम्पादित कर रहे हैं। विरुद्ध पक्ष में कमजोरी तथा स्वयं में वाग्विदग्धता का आभास अनोखा होता है। अनपढ़ आदमी भी अपनी कार्यसिद्धि पर सन्तोष प्रकट कर केवल अपने भाग्य को सराहा करता है, क्योंकि उसे क्या पता कि उसके स्वर ने उसकी सफलता में सहयोग दिया है जबकि अनजान में उसने सूर्य स्वर में कोई कठिन कार्य वार्तालाप से सिद्ध किया हो।

राजनीति वार्ता

एक प्रश्न उठ सकता है कि जिस समय राजनीति आदि उपरोक्त बातें करनी हों उस समय यदि दाहिना स्वर न चले तो क्या किया जाय? इसका संक्षेप में यही समाधान है कि राजनैतिक वार्ता आदि निश्चित समय पर होने वाले कार्यों के तीन चार घन्टे पूर्व बांयां स्वर चला लेना चाहिये, जिससे बाद में बहुत देर तक दाहिना स्वर चलता रहे। इसमें विशेष लाभ यही है कि बांयें स्वर में पुष्टि, शान्ति आदि की प्राप्ति होती है और राजनैतिक वातावरण की गरमागरम बहस से पूर्व इन सबका होना नितान्त जरूरी है, जिससे उस कार्य में पूरा लाभ उठाया जा सके।

स्वरशास्त्रानुसार मूत्र विसर्जन (पेशाब) बांयें स्वर में करना चाहिये, परन्तु आप परीक्षा करके देखें कि किस स्वर की स्थिति में पेशाब करने से शारीरिक लाभ व सुख शान्ति मिलती है? आपका अनुभव ही इसके पक्ष या विपक्ष में अपना मत देगा। यदि भोजन दाहिने स्वर में किया व पानी चन्द्र स्वर में पिया जाय तो टट्टी पेशाब का अभ्यास भी अपने आप

शौच आदि

इसी प्रकार नियमानुसार हो जायगा।

दाहिने स्वर में जल पीने से पेशाब सम्बन्धी प्रमेह, पथरी का बनना, वीर्य-पात आदि आदि बीमारियाँ उत्पन्न होंगी, क्योंकि दाहिना स्वर अग्नि है। जैसे गरम तवे पर पानी डाला जावे तो पानी अपना उचित असर नहीं दिखला सकता, और इससे परिणाम बुरा ही निकलता है। वही परिणाम दाहिने स्वर में जल पीने से होगा। अत पेय पदार्थ का प्रयोग दाहिने स्वर में न करके चन्द्र स्वर में करना चाहिये।

भोजन दाहिने स्वर में व पानी बायें स्वर में पीने से टट्टी भी दाहिने स्वर में व पेशाब बायें स्वर में स्वय होने लग जायगा, यानि पेशाब और टट्टी साथ साथ नहीं होंगे। जैसे आजकल मानव प्राणियों के कृत्रिम भोजन—पान से देखने में आता है। पशु पक्षियों व छोटे छोटे स्वस्थ बच्चों में ऐसा नहीं होता कारण कि प्रकृति के अनुसार उनका व्यवहार चलता है जबकि मनुष्य का व्यवहार इससे विरुद्ध देखने में आता है।

यह एक अनुभूत ज्ञान है कि नये चन्द्र का दर्शन इडा नाडी में करना चाहिये। ऐसा करने से उस मास में सर्वसिद्धि, सर्वानन्द एवं सर्वशान्ति होती है और उस मास में किसी प्रकार का कष्ट नहीं भोगना पड़ता। यदि किसी के कोई

इडा में नये चन्द्र का दर्शन

बीमारी चल रही हो तो वह द्वितीया को उचित स्वर चलाकर इडा नाडी में नये चन्द्र का दर्शन कर ले तो शरीर स्वस्थ और पूर्णानन्द होगा। कठिनातिकठिन कार्य भी उस मास में सिद्ध हो जायेंगे। यदि इसके विपरीत दक्षिण स्वर में चन्द्र दर्शन किया जायगा तो पूर्व फलों के विपरीत कार्य होगा और मास भर अशान्ति रहेगी। हो सकता

है कि आपको अचानक ही स्थान परिवर्तन करना पड़े। साधारण रूप में प्रति-दिन इडा नाड़ी में चन्द्रदर्शन शुभ होता है।

सूर्यदर्शन

दाहिने स्वर में सूर्यदर्शन करना अत्युत्तम होगा। ऐसा करने से उस दिन हर तरह का आनन्द रहकर कार्यसिद्धि होगी। वैसे आमतौर पर हर तिथि को दाहिने स्वर में सूर्यदर्शन करना उत्तम होगा।

सुषुम्णा नाडी

साधारण रूप से सुषुम्णा नाडी सांसारिक कामों में असफलता देती है। इस नाडी में क्षण क्षण में बांया दांया स्वर चलता हुआ मालूम पड़ेगा और दोनों नसकोरों में ही हवा आवेगी तथा कोई भी नाडी साफ चलती नजर न आवेगी। अर्थात् यह दोनों नाडियों के बीच में स्थिर रहने वाली नाडी है। यह स्थिति संध्या (भगवत् पूजा) के लिए उत्तम है। जो नर भगवत् भजन से कुछ आत्मानन्द प्राप्त करना चाहें उन्हें चाहिये कि वे इसके चलने पर ही ईशस्तवन करें ताकि उन्हें अपने काम में शीघ्र सफलता मिले। इसके चलने पर मन सांसारिक झगड़ों से हटकर अच्छी स्थिति में स्थित रहता है जिससे मनोवांछित-स्तवन का आत्मानन्द प्राप्त करता है। यह नाडी शरीर की संधि या संध्या है। जिस प्रकार सूर्य के उदय अस्त होने से दिन रात की सन्धि होने पर ईशपरायण नर संध्या करने बैठ जाते हैं, वैसे ही सुसज्जन किसी भी समय स्वशारीरिक संध्या बनाकर भगवत् भजन कर सकते हैं। उन्हें सांसारिक मनुष्यों के समान प्रकृति की बनावट की ओर नहीं देखना पड़ता। 'शिव स्वरोदय' में इसे हर कार्य को नाश करने वाली लिखा है। बात उचित भी है, क्योंकि इसके प्रवहण समय में अग्नितत्त्व काल रूप से प्रज्वलित रहता है, अत: इसे सब कार्यों की नाशक, विषमयी अग्नि समझें। इसमें क्रूर या सौम्यकार्य करें, सभी निष्फल

होते हैं। इसके चलते समय किसी प्रकार के सांसारिक काम का चिन्तन न कर केवल ईशस्तवन करना चाहिये। कुछ स्वर ज्ञानियों का सिद्धांत है कि इसके चलने पर शाप या वरदान देना श्रेष्ठ समझा गया है। *

---

* भारत में इस समय भी लाखों आदमी नित्य सन्ध्या करते हैं, परन्तु उनमें से पूर्ण फल प्राप्ति एक दो को भी मुश्किल से होती है, कारण कि वे स्वरों की संधि को नहीं समझते हैं, और न वे अपने अच्छे कार्यों द्वारा हृदय को शुद्ध रखते हैं। याद रक्खो यदि सुषुम्णा स्वर में पूरक समय में प्रार्थना की जाय तो वह अचूक होगी, इसमें कोई सन्देह नहीं है।

नवम प्रकाश

जय, पराजय, गर्भाधान, भाग्योदय, आग बुझाना, वंध्यापुत्रोत्पत्ति, संततिनिरोध

संसार में बहुधा बुद्धिबल तथा मनोबल से सफलता मिलती है, परन्तु फिर भी तत्त्व भेद से इसका निर्णय करना चाहिये। यदि तत्त्व ठीक न होगा तो सफलता की कमी रहेगी। स्वर के अन्दर प्रवेश करने पर सफलता और निकलने पर प्राय असफलता देखी गई है।

कार्यसिद्धि

यदि कोई मन चाहा काम करना चाहे या किसी को अपने पक्ष में करना हो तो उसका सूत्रपात अनुकूल स्वर में करना चाहिए। यदि स्वर अनुकूल न हो और कार्य प्रारम्भ करना अत्यावश्यक हो तो परिहार रूप में जिस ओर का स्वर चल रहा हो उसी ओर के अङ्ग को काम में पहले प्रवृत्त कर लेना चाहिए। इससे सफलता मिल जाती है। जैसे गमन के समय जो नाड़ी चलती हो उसी ओर का पैर पहले उठाकर चलना चाहिए। वैसे मिलन कार्य में दाहिना स्वर उत्तम है परन्तु उपर्युक्त रीति से चन्द्रस्वर (वामस्वर) में भी सफलता प्राप्त हो सकती है। मेरा यह अनुभव है कि वामस्वर चलता हो तो २, ४, ६ आदि सम पैर और सूर्यस्वर में १, ३, ५ विषम पैर आगे रखकर यात्रा करने से सिद्धि प्राप्त होती है।

सम्मिलन आदि
के काम

कार्य में सफलता अनुकूल स्वर तथा तत्त्व पर निर्भर है। तत्त्वों की पहिचान हो या न हो एक साधारण नियम यह है कि उस समय जो स्वर चल रहा है उसी तरफ सामने वाले पुरुष को रखकर बातचीत करनी चाहिये। इसमे प्राय काम सिद्ध होता है यह एक स्वानुभूत योग है। श्री तडित्कान्त झा का कथन है कि ऐसा करने पर, आपका विरोधी भी आपकी इच्छानुसार काम करने में प्रवृत्त हो जायगा। परन्तु मैं इससे सहमत नहीं हूँ। सम्भवत उन्होंने इसे साधारण नियम रूप से लिखा हो, अन्यथा विरोधी, शत्रु, राक्षस, नीच आदि को चलते स्वर की ओर न रखकर खाली स्वर की ओर रखना चाहिये क्योंकि ऐसे पुरुष शत्रु श्रेणी में आते हैं और यदि उन्हें खाली स्वर की ओर रक्खा जायगा तो वे हमारे श्वास को न पी सकेंगे। सबसे पहले अपने बुद्धि बल से मित्र या शत्रु का निर्णय करना चाहिए। यदि अपना अफसर भी विपरीत राय का हो, तो उसके प्रति भी शत्रु सम्मान ही व्यवहार करना चाहिये। इससे वह अपनी मनमानी बात आप पर न थोप सकेगा या आपको न दबा सकेगा। इसी प्रकार व्यापार में, दुष्ट पुरुष को—जो हमारे से उच्चाटन, ठगी, चोरी आदि करना चाहे उसे—रिक्त स्वर की तरफ रखना चाहिये। रिक्त स्वर की तरफ काल, भयंकर शस्त्र, सर्प, व्याधि होने पर भी कुछ बिगाड़ न सकेगी।

लेन-देन आदि में भी वही हाथ या अंग काम में लाना चाहिये, जिधर का स्वर चल रहा हो। ऐसा करने से किसी तरह का नुक्सान या अशांति न होकर काम सफलता के साथ होता है।

युद्ध में दाहिना स्वर उत्तम माना गया है। इसमें जो अपने शत्रु पर वार करता है उसकी हमेशा जीत होती है, परन्तु अपने शत्रु को सदा खाली स्वर की ओर रखकर हमला करना चाहिए। ऐसा करने से यदि वह हमारे ऊपर आक्रमण करेगा तो उसका आघात खाली जायगा। यदि दो परस्पर शत्रु हैं और उन दोनों की

समर में स्वरों की उपादेयता

दाहिनी नाडी चल रही हो तो जो शत्रु पहले घर मे निकलेगा उसकी विजय होगी। यदि सब बातें समान हों तो न्याय पथ पर चलने वाले की विजय होगी, क्योंकि उसके मन और प्राण में सबसे अधिक बल, धीरता और आशा होगी। कुछ लोगों का मत है कि यदि दूर देश में युद्ध करना हो तो चन्द्रमा विजय दाता है और समीप देश में सूर्य, तथा शस्त्र उसी अंग की तरफ से चलाना चाहिये जिधर का स्वर चल रहा हो। युद्ध में भयकर से भयकर शत्रु को भी जीता जा सकता है यदि, चलती हुई नाडी को पूर्णतया खींच कर समर में चले। शत्रु को कभी अपने जीव (चलायमान) स्वर की ओर से हमला करने का अवसर न दे। ऐसा न करने देने से वह चाहे कितना ही बलवान क्यों न हो हमें जीत नहीं सकता। याद रक्खें घात हमेशा आपके चलते हुए स्वर की ओर ही होगा। शून्य स्वर वाला अंग हमेशा रक्षित रहता है।

यहाँ पर आपको सुविधाके लिये नीचे एक तालिका दी जारही रही है जिससे आप काफी लाभ उठा सकते हैं। यदि कोई प्रश्नकर्ता अपना अनुकूल स्वर लेकर उत्तर-दाता के पास आवे तथा आपका भी स्वर उचित हो तो युद्ध में गये हुए को कुशल माने और यदि विपरीत अवस्था हो तो इस तरह के अपने सम्बन्धीके विषय में जाने:—

पृथ्वी तत्त्व हो तो पेट में, जल तत्त्व हो तो पैर में, तेज तत्त्व हो तो छाती में, वायु तत्त्व हो तो जाघ में, आकाश तत्त्व हो तो, मस्तिष्क में घाव लगा है, ऐसा समझना चाहिये।

से पूछे तो ध्रुव बताना। समर सम्बन्धी प्रश्नों में भिन्न भिन्न नाड़ियों के चलने पर प्रश्नकर्ता नीचे लिखी दिशाओं की ओर खड़ा होवे तो विजय होगी यदि वह खाली स्वर की ओर न हो—

१–चन्द्र नाड़ी चलने पर—उत्तर या पूर्व दिशा की तरफ।

२–सूर्य नाड़ी चलने पर—दक्षिण या पश्चिम दिशाकी तरफ।

यदि वामस्वरमें चलकर युद्ध किया जाय तो हार होती है। यदि कोई दो पुरुषों के युद्ध का एक ही बार प्रश्न करे और प्रश्नकर्ताकी ओर जीवस्वर चलता हो तो पहले की जय बतावे या जाने। यदि प्रश्नकर्ता बांये स्वरमें प्रश्न करे तो सन्धि होगी। सूर्यस्वरमें प्रश्न करने पर युद्ध होगा। इस प्रकार स्वरज्ञानी अपने स्वरबलकी सहायता से भविष्य की बात जानने की क्षमता रखता है।

गर्भाधान

आजका संसार विना पुत्रों के और अधिक पुत्रियोंके पैदा होनेसे चिन्तित है। उसे दूसरेसे इस विषयमें सहायता न लेकर अपने शरीरस्थित ज्ञानसे सहायता लेनी चाहिये। मनुष्य स्वर साधन द्वारा इच्छानुसार फल प्राप्त कर सकता है। इसमें अणुमात्र भी सन्देह नहीं है।

पुत्रोत्पत्ति

वैदिक शास्त्र मतानुसार स्त्रीके रजस्वला होने के तीन दिन बाद चौथे दिनसे १६ वें दिन तक गर्भाधानका समय उचित समझा है। इनमें भी उत्तरोत्तर दिन अच्छे माने गये हैं। यथा ४, ६, ८, १०, १२, १४, १६ वीं रात क्रमश: उत्तम रात्रियां मानी गई हैं और कन्याकी उत्पत्ति के लिये ५, ७, ९, ११, १३, और १५ वीं रात्रि ठीक मानी गई है। यदि सुपुत्र पैदा करना हो तो जब पुरुष की पिंगला नाड़ी में जल या पृथ्वी तत्त्व बहता हो तो

और स्त्री की इडा नाड़ी में जल या पृथ्वी तत्त्व बहता हो उस समय में सम्बन्ध करने से पुत्र ही उत्पन्न होगा। क्योंकि पिंगला नाड़ी दाहिने अंग की प्रधान नाड़ी होनेके कारण उस अंगको अधिक मन्थनकर वहाँसे ज्यादा वीर्य निकालती है और उसमें अव्यर्थ वीर्य होने से पुत्र ही उत्पन्न होगा। यदि इसके विपरीत स्वर में काम किया जायगा तो कन्या होगी।

यदि स्त्री प्रसंग करते समय पुरुष का सूर्य हो और वीर्यके पात समयमें चन्द्र स्वर चलने लग जाय और स्त्री का स्वर भी वाम स्वर रहे तो गर्भस्थिति न होगी, क्योंकि यह एक निश्चित सिद्धान्त कि पुरुष है और स्त्रीका एकस्वर हो तो गर्भ नहीं रहता। आजकल नूतन सभ्यताभिमानी, फैशन-परस्त विलासमय जीवन में पलने वाले स्त्री पुरुषों के लिये यह एक स्वर्ण उदाहरण सामने रक्खा जाता है कि वे इस सिद्धान्तका मननकर इसे क्रियात्मक रूप दें तो उन्हें बहु-सन्तानके भार से शीघ्र ही छुटकारा मिल सकता है। साथमें उन्हें किसी औषधि सेवन का झंझट भी न करना पड़ेगा। आजके युगमें सन्तान-निग्रह के लिये अनेक प्रकार की औषधियाँ, मन्त्र-यन्त्र आदि किये जाते हैं। इससे केवल प्रसंग में आनन्दकी कमी ही न आकर घातक बीमारियों का भी शिकार होना पड़ता है, और प्राकृतिक स्वास्थ्य से भी हाथ धोना पड़ता है। प्रायः यह भी देखने में आया है कि स्त्री पुरुषों में मनमुटाव हो जाया करता है। इसका एक मात्र कारण बीसवीं शताब्दी की औषधियाँ ही हैं। सं० २००३ में इसी तरह की एक तलाकका केस अमेरिकामें हुआ जिसमें पुरुषने अपनी पत्नी पर यह अभियोग लगाया कि—"मेरा अपनी स्त्री के साथ विवाह होने के बाद आज (सात आठ वर्ष) तक वास्तविक सम्बन्ध (*Consummation of marriage*) नहीं हुआ क्योंकि वह संगम के समय सन्तान निग्रह के कृत्रिम उपाय काममें लाती रही है। अतः तलाक होना चाहिये।" इस प्रकार के बखेड़े आज के जमाने में स्वरसिद्धान्त के ज्ञान की कमीके

गर्भ न रहना

कारण हुआ करते हैं। स्वरसिद्धान्त के ज्ञाताओं को इन समस्याओं का सामना ही नहीं करना पड़ता।

वध्याके भी पुत्र उत्पन्न हो सकता है यदि ऋतु के प्रारम्भ में पुरुष का सूर्य स्वर और स्त्रीका चन्द्रस्वर चले एव दोनों का संगम हो जाय, परन्तु संगमके प्रारम्भ में पुरुष का सूर्य स्वर चले और वीर्यपातके समय चन्द्रस्वर बहने लगे तो इस कारण से स्त्री गर्मधारण नहीं कर सकती। जैसे "शिव स्वरोदय" में लिखा है:—

वध्याके पुत्र

ऋत्वारम्भे रवि: पुंसां स्त्रीणां चैव सुधाकर: ।
उभयो सङ्गमे प्राप्ते वध्यापुत्रमवाप्नुयात् ॥
ऋत्वारम्भे रवि पुंसां शुक्रान्ते च सुधाकर ।
अनेन क्रमयोगेन नादत्ते सैव दारुणम् ॥

चाहे दिन चाहे रात, यदि सुषुम्णा नाडी चलने लगे, या सूर्य नाडी चल रह ही और अग्नितत्त्व का उदय हो तो गर्माधान करने से वध्या भी सन्तानवती हो जाती है। यह श्री तडित्कान्त झा का मत है, परन्तु 'शिव स्वरोदय' का मत इससे विरुद्ध है। उसका कथन है कि:—

विषमांके दिवारात्रौ विषमांके दिनाधिप: ।
चन्द्रनेत्राग्नि तत्त्वेषु वन्ध्या पुत्रमवाप्नुयात् ॥

अर्थात्— ऋतु के अनन्तर विषम दिनों में पुरुष का सूर्य स्वर दिन या रात्रि में चले व स्त्री का चन्द्र स्वर चले और पृथ्वी, जल, अग्नि तत्त्वों में गर्भाधान हो तो वंध्या के भी पुत्र हो जाता है। परन्तु इन दोनों भिन्न भिन्न मतों की जांच

और लगन रखने वाले ज्ञानी जन ही कर सकते हैं। मेरे मतानुसार अगर मनुष्य शुद्ध विचार से पुत्रोत्पत्ति के हेतु ही अपनी स्त्री से संगम करे और मनुष्य का सूर्य स्वर हो तथा स्त्री का चन्द्र स्वर हो व जल तत्व हो तो स्त्री गर्भवती होती है और उसे अवश्य पुत्र की प्राप्ति होती है। मैंने यह योग चार सज्जनों को बताया जो मेरे पास यह प्रश्न लेकर आये थे। उनमें से तीन को सफलता मिली यानि उन्हें पुत्र प्राप्ति हुई।

गर्भ के परिणाम सम्बन्धी प्रश्नों में उत्तरदाता का चन्द्र स्वर चलते समय प्रश्न करे तो बताना चाहिये कि कन्या होगी और सूर्य स्वर चले तो पुत्र। सुषुम्णा में गर्भपात या नपुंसक होना बतावे। जो स्वर चल रहा हो और उसी हाथ की तरफ पूछने वाला आकर बैठे तो उसे बताना चाहिए कि पुत्र होगा। वायु व पृथ्वी तत्त्व चलता हो तो पुत्र, अग्नि तत्त्व में गर्भपात, आकाशतत्त्व में नपुंसक ऐसा फल बतावें।

यदि प्रश्न कर्त्ता आपके पास आवे और आपका स्वर दाहिना हो और आने वाले का स्वर बांया चलता हो तो निःसन्देह उत्तर दे सकते हैं कि लड़का होगा, पर मर जाने का भय है। इसके विपरीत स्वर हो तो लड़की होकर मरने का भय है। दोनों पुरुषों—अर्थात् प्रश्न कर्ता और उत्तरदाता—के चन्द्र स्वरों की एकता में लड़की उत्पन्न होगी। और यदि दोनों का दाहिना स्वर हो तो लड़का उत्पन्न होगा। आकाशतत्त्व में प्रश्न किये जाने पर निश्चित रूप से आप कह सकते हैं कि गर्भपात होगा।

प्राय मेरे देखने में यह आया है कि प्रश्न कर्त्ता के अपढ़ होने के कारण वह यह नहीं बता सकता कि उसका कौनसा स्वर चल रहा है, अतः उत्तरदाता को अपने स्वर पर ही निर्भर रहना पड़ता है। ऐसी स्थिति में दाहिने स्वर में लड़का और चन्द्र स्वर में लड़की होगी। यह बात प्राय ठीक उतरती है।

यदि कोई प्रश्नकर्ता रोगी के सम्बन्ध में बाईं ओर से प्रश्न करे और उत्तरदाता का सूर्य स्वर चल रहा हो तो रोगी नहीं बचेगा। जीव स्वर की ओर से प्रश्न किया जावे तो कहना चाहिये कि रोगी बचेगा। यदि वाम स्वर में बाईं ओर

रोगी संबंधी प्रश्न

से प्रश्न किया जाय और पृथ्वी तत्त्व हो तो एक मास में रोगी ठीक हो जायगा। यदि सुषुम्णा हो और गुरुवार हो

एवं वायुतत्त्व भी चल रहा हो तो रोगी मरेगा नहीं, परन्तु यदि शनिवार हो और आकाशतत्त्व हो तो रोगी उसी रोग से मर जायगा।

चन्द्र नाड़ी में प्रश्न के समय जल या पृथ्वी तत्त्व में एक रोग और बाकी तत्त्वों में ज्यादा रोग बतलाने चाहिये। सूर्य स्वर में अग्नि, वायु या आकाश में एक रोग और पृथ्वी या जल में अनेक रोग समझने चाहिये।

प्रवास सम्बन्धी प्रश्नों में निम्नलिखित उत्तर देना चाहिये — प्रश्न करते समय पृथ्वी तत्त्व हो तो प्रवास में कुशलता, जल तत्त्व हो तो रास्ते में पानी की बाढ़, अग्नि तत्त्व हो तो कष्ट, वायु तत्त्व हो तो प्रवासी आगे चला गया है, आकाशतत्त्व हो तो प्रवासी रोगी हो गया है, सुषुम्णा तथा पृथ्वी व आकाश तत्त्व का संयोग हो तो प्रवासी मर जायगा। परन्तु जीव व पूरक स्वर का हर एक प्रश्न में ध्यान रख कर निर्णय करना चाहिये वरना असफलता का सामना करना पड़ेगा।

जिस किसी को भाग्योदय की वृद्धि करने की आवश्यकता हो उसे नीचे लिखे नियमों के साथ साथ पूर्णरूपेण अभ्यास करने से सिद्धि प्राप्त होगी। यह एक अनुभूत योग है। भाग्यवादी परीक्षा करके इन नियमों का अनुसरण करें तो वे भाग्य का महिमा छोड़कर पुरुषार्थ का महत्त्व स्वीकार करेंगे।

भाग्योदय

हमेशा जितनी भी शीघ्रता हो सके सूर्योदय से पहले उठे और उठते समय पूरक स्वर से अर्थात् पूरा श्वास अन्दर नाभि तक भरते हुए उठे। उठते समय जिस ओर की नाक में श्वास चल रहा हो उस तरफ के हाथ को मुंह पर फेर कर उसका दर्शन करे और उसी तरफ का पैर पृथ्वी पर रख शय्या त्याग करे, तथा अपने में यथाशक्य वृद्धि के लिये ईश्वर से प्रार्थना करे कि मेरे भाग्य में अमुक अमुक वृद्धि हो। सोचे कि अब मेरी दिनों दिन उन्नति होगी और घर में सर्वदा

खो रहूँगा। इस प्रकार करने से वह अवश्य सुखी होगा, और बराबर वृद्धि करता श्रा दिखलाई पड़ेगा। इसमें जरा भी सन्देह नही, परन्तु नित्य नियमित रूप ौर लगन से करने पर ही यह नियम फलदायक होगा।

आग बुझाने की विधि श्रीतडित्कान्त झा के मतानुसार यह है कि कहीं आग लगने र जिस ओर पवन की गति से आग बढ रही हो उस दिशा में पानी का पात्र लेकर खड़ा हो जाय। फिर जिस नथुने से श्वास चल रही है उससे श्वास अन्दर खींचते हुए थोड़ा सा पानी पियें और पात्र में

आग बुझाना

प सात रत्ती जल लेकर अंजलि से आग पर छिड़क दें। थोड़ी देर में आग आगे न बढकर बुझ जायगी। किसी-किसी का मत यह है कि सात रत्ती जल लेकर इस मंत्र से—

"उत्तारयां च दिग्भागे मारीचो नाम राक्षस'
तस्य मूत्रपुरीषाभ्यां हतो वह्नि स्तम्भ स्वाहा"

अभिमन्त्रित करके अग्नि में डाल देना चाहिये। इसका बहुत बार प्रयोग करके आश्चर्यजनक प्रभाव देखा गया है। इससे अनेक पुरुषों की धन सम्पत्ति की रक्षा हुई है। क्या ही अच्छा होता यदि भारत अपनी प्राचीन विद्याओं को न भूलकर वर्तमान समय में (१९४७ ई० में पजाब आदि में) होनेवाले सैकड़ों काण्डों जैसी विपत्तियों से अपनी रक्षा करता। परन्तु खेद है कि इस विज्ञान को जानने की उत्सुकता तो दूर रही इसका नाम सुनकर ही लोग नाक भौंह सिकोड़ते हैं। ध्यान रहे कि शरीर में भी कोई गूढ शक्ति है जो सात रत्ती जल से आग बुझा सकती है। इस विद्या के वास्तविक ज्ञाता न होने से इसका प्रचार संसार में बहुत ही कम है। आज के नागरिक जीवन को देखते हुए हमें इन सब विचित्र विद्याओं की जानकारी के लिए चेष्टा करनी चाहिये।

स्वर की सहायता से व्यापार करने पर हमेशा लाभ ही लाभ होता है, नुकसान कभी नहीं होता। इसकी सहायता से प्रातःकाल जब आँख खुले तो मन चाहा फल प्राप्त करने के लिये ईश्वर से यों प्रार्थना करें—"हे ईश्वर मेरी अमुक इच्छा अमुक समय तक पूर्ण कर।" केवल इतना ही कहकर अपने दैनिक जीवन में संलग्न हो जाय।

मेरे विशेष अनुभव

केवल मात्र इतने नियम के पालन करने में ही ऐसी जबर्दस्त शक्ति छिपी हुई है जो हर मानव को आश्चर्य चकित कर देती है। यह बात ध्रुव सत्य और अनुभूत है। इस प्रकार के नियम पालन करने वाले का मन दृढ़—संकल्पयुक्त होना चाहिये। उस समय में डाँवाडोल स्थिति नहीं होनी चाहिये। मैंने इससे बड़ी बड़ी समस्याएँ हल की हैं और आज भी कर रहा हूँ। परन्तु इस आत्मशक्ति से किसी का बुरा करने के लिये अनुचित लाभ नहीं उठाना चाहिये। इससे सफलता के स्थान पर असफलता की संभावना अधिक रहती है। संसार में भले काम जो देखने में पहले कठिन और असाध्य से मालूम पड़ते हैं, उन कामों को अवश्य इस क्रिया के द्वारा निष्काम-कर्म-सिद्धान्त की कसौटी पर कसकर करना चाहिये। इसमें आशातीत सफलता प्राप्त होगी। ऊपर जो समय या काल उपरोक्त विधि के सम्पादन के लिये बतलाया गया है उसमें अधिकता या कमी के लिये हमें प्रकृति के नियमों की ओर ध्यान देकर लाभ उठाना चाहिये। सारांश यह है कि जिस काम के बनने में जितने समय की अपेक्षा रहती है उतना समय हमें अवश्य देना चाहिये। जैसे, किसी को सन्तानोत्पत्ति की इच्छा हो तो उसे कम-से-कम एक वर्ष का समय अपनी इच्छा पूर्ति करने के लिये देना चाहिये और साथ साथ में नित्य एक पृष्ठ "ॐ, ॐ" का लिखना चाहिये, परन्तु लिखते समय में इच्छा शक्ति की ओर ध्यान रखने से कार्यसिद्धि सरलता और शीघ्रता से होती है। ऐसा मेरा पूर्ण अनुभव है।

दशम प्रकाश

नये वर्ष का फल

भिन्न भिन्न मतों के वर्ष के प्रारम्भ के दिन अथवा विशेष विशेष पर्वों पर वर्ष भर का सब प्रकार का फल निर्णय करना चाहिये यथा चैत्र शुक्ला प्रतिपदा, मेष सक्रान्ति, दक्षिणायन या उत्तरायण के प्रारम्भ में, अक्षय तृतीया या माघ शुक्ला सप्तमी को। इसी प्रकार अकाल सुकाल या जमाने का हाल भी पहले ही जान लेना चाहिये। मेष राशि की सक्रान्ति जिस समय लगे उस समय सूक्ष्म सूक्ष्म विचार करके निर्णय करना चाहिये। मैंने पिछले दो तीन वर्षों के-विशेष रूप से चैत्र शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा को-सूर्योदय के समय वर्ष फल का निर्णय करके देखा है और वह निश्चित रूप से सही उतरा है।

सूर्योदय के समय भगवान् का ध्यान करके चैत्र शुक्ला प्रतिपदा को प्रातःकाल देखना चाहिए कि चन्द्र स्वर चल रहा है या अन्य स्वर। चन्द्र स्वर में जल तत्त्व बहता हो तो अधिक वर्षा होगी और अच्छा जमाना होगा। पृथ्वी धन धान्य से पूर्ण होगी। परन्तु मलेरिया की शिकायत होने की सम्भावना रहती है। इस पर भी बहुत अच्छा जमाना हो जाने से उसकी प्रतीति नहीं होगी। पृथ्वी तत्त्व होने से जमाना अच्छा जरूर होता है, परन्तु वर्षा उतनी नहीं होती जितनी कि जल तत्त्व में। अग्नि तत्त्व चलता हो तो अकाल का भय रहेगा। संसार में संघर्ष बहुत होगा। वायु तत्त्व में जमाना ठीक ठीक होगा, परन्तु राजविग्रह का भय रहेगा। आकाश तत्त्व में भयंकर अकाल पड़ेगा

और पृथ्वी पर मारी भय उत्पन्न होगा। दाहिने स्वर में पहले से कम फल होगा, इसका निर्णय सोच समझ कर देना चाहिए। सुषुम्णा नाड़ी चल रही हो तो महा-अकाल, राजाओं में हेर फेर, भयंकर बीमारियां और यन्त्रणा आदि का भय रहेगा, एवं अपनी मृत्यु का भी भय रहेगा। जल व पृथ्वी तत्त्व में प्रत्येक कार्य की सिद्धि होती है। स्वयं की विजय, न्याय से राज्य संचालन, सब जगह शान्ति स्थापन और शत्रुओं की हार होगी। मेरे अनुभव में तो उक्त समय पर चन्द्र स्वर के अतिरिक्त कोई स्वर नहीं चलता हुआ मिला। इसके अतिरिक्त जो फल लिखे हैं वे ग्रन्थान्तर में हैं।

इसी प्रकार मेष संक्रान्ति, अक्षय तृतीया आदि के दिन प्रातः काल स्वर तथा तत्त्व देखकर निर्णय करना चाहिये। इन दिनों में अन्यान्तर तत्त्व और कड़ाई, नर्मी आदि का भी स्वरों में भान होता है। इसलिए बहुत ही शान्ति के साथ सूक्ष्मातिसूक्ष्म निर्णय करना चाहिये। सूर्य के स्वर में चन्द्रमा और चन्द्रमा के स्वर में सूर्य चलने लग जाय तो अन्न संग्रह करने से लाभ होगा। सूर्य स्वर में अग्नि और आकाश तत्त्व का उदय हो तो अन्न आदि का संग्रह करने से दो मास के बाद में महंगाई आने से लाभ होगा। जोधपुर निवासी श्री रामलाल जी ने अपनी पुस्तक "स्वर ज्ञान-चिन्तामणि" में लिखा है कि यदि चैत्र शुक्ला प्रतिपदा को सुषुम्णा हो तो मृत्यु प्रकट होगी—अर्थात् उस वर्ष में अकाल-मृत्यु अधिक होगी। निर्णय देते समय सबसे अधिक आस-पास के प्रान्त का भविष्य बतलाना चाहिए। क्योंकि आस-पास के प्रान्त में इसका निर्णय फल अधिक ठीक मिलता है और दूर देशों के लिये कम। वैसे साधारण रूप से सभी जगह का फल ठीक-ठीक मिलता है।

एकादश प्रकाश

श्वास-प्रश्वास से आयु का सम्बन्ध

श्वास-प्रश्वास से आयु का बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध है। एक मिनट में जो प्राणी कम से कम श्वास लेता है उसकी उतनी ही ज्यादा उम्र होती है।

हम नीचे लिखी तालिका से बतायेंगे कि कौनसा प्राणी एक मिनट में कितने श्वास लेने के कारण कितने वर्ष जीवित रहता है। हमें इस तालिका से शिक्षा लेनी चाहिये कि गहरी और धीमी श्वास से हम अपने छोटे मानव जीवन को कितना बढ़ा सकते हैं। वह तालिका इस प्रकार है—

प्राणी नाम	प्रति मिनट	पूर्ण आयु (वर्षों में)
खरगोश	३८ श्वास	८
बन्दर	३२ ,,	१०
कुत्ता	२९ ,,	१२
घोड़ा	१९ ,,	२५
मनुष्य	१३ ,,	१२०
सर्प	८ ,,	१०००
कछुआ	५ ,,	२०००

यहां पर कुछ और प्राणियों की तालिका देते हैं जिनके श्वास की प्रति मि० की गति निश्चित न होने के कारण सिर्फ जीवनावधि का उल्लेख करते हैं:—

प्राणी नाम	पूर्ण आयु (वर्षों में)	प्राणी नाम	पूर्ण आयु
ह्वेल मछली	५००	पारक मछली	२००
मगर	१००	हाथी	१००
बाज	१००	राजहंस	१००
कौआ	१००	सॉमन मछली	१००
बगुला	६०	बान मछली	६०
हंस	६०	गिद्ध	५०
अबाबील	५०	सिंह	४०
बिन्याजी	४०	ऊंट	४०
गौरैया	३०	चकवा	३०
गाय	२५	सुअर	२४
मोर	२४	सारस	२४
कबूतर	२०	बुलबुल	१८
लावा	१८	बकरी	१५
तीतर	१५		

इस प्रकार संसार में जितने प्राणी हैं उनकी आयु श्वास-प्रश्वास की गति के अनुसार अधिक या कम होती है। किसी किसी का मत है कि मनुष्य एक मिनट में १२ की अपेक्षा १५ श्वास साधारण रूप से लेता है। मेरे मत में भी यही सिद्धान्त ठीक है। यह बैठे हुए मनुष्य के श्वास की गति का लेखा है। भिन्न भिन्न परिस्थितियों में श्वास की गति अधिक या कम भी हो सकती है। जैसे गाते समय १६ बार, खाते समय २० बार, चलते हुए २४, शयन समय ३०, मैथुन समय में ३६ श्वास की गति बतलाई है। जो आदमी इसको जितना कम खर्च

करता है वह उतनी ही अपनी आयु बढाकर नई नई शक्तियां प्राप्त कर सकता है। श्वास साधारण रूप से बाहर निकलते समय १२ अंगुल व अन्दर जाते १० अंगुल तक क्रिया करता है। यहाँ हम पाठकों की ज्ञानपिपासा शान्त करने के लिये रुचिकर तालिका दे रहे हैं।

ज्ञान पिपासा शान्त करने की तालिका

जो व्यक्ति अपनी श्वास की गति को १२ से घटा कर

(१) ११ तक लाता है, उसके प्राण स्थिर हो जाते हैं।
(२) १० ,, ,, उसे महान् आनन्द प्राप्त होता है।
(३) ९ ,, ,, उसमें कवित्व शक्ति आती है।
(४) ८ ,, ,, उसे वाक् सिद्धि होती है।
(५) ७ ,, ,, उसे दूर दृष्टि प्राप्त होती है।
(६) ६ ,, ,, वह आकाश में उड़ सकता है।
(७) ५ ,, ,, उसमें प्रचण्ड वेग आता है।
(८) ४ ,, ,, उसे सब सिद्धियां प्राप्त होती हैं।
(९) ३ ,, ,, उसे नव निधियां प्राप्त होती हैं।
(१०) २ ,, ,, वह अनेक रूप धारण कर सकता है।
(११) १ ,, ,, वह अदृश्य हो सकता है।
(१२) प्राण की गति का परिमाण यदि नखाग्र रह जाय तो उसे यमराज भी नहीं खा सकता अर्थात् वह अमर बन जाता है।

इस सावधानी के लिये यौगिक क्रिया बहुत आवश्यक है और प्राणायाम इसमें

पहली सीढ़ी है। यौगिक क्रिया गुरु द्वारा ही प्राप्त की जा सकती है। इस संसार में विरले ही ऐसे सिद्ध पुरुष हैं जिन्होंने इसे स्वयं प्राप्त किया हो, अन्यथा किसी न किसी गुरु के चरणों में बैठकर ही इन क्रियाओं का अभ्यास किया जा सकता है। दीर्घ आयुष्याभिलाषी जनों को चाहिये कि वे हमेशा श्वास को नाभि तक लेजाकर छोड़ें, नहीं तो कोई विशेष लाभ नहीं होता है।

आजकल संसार में बहुत-से पुरुष निष्क्रिय बैठकर सोचा करते हैं कि उनकी उम्र बढ़ रही है। उनका सिद्धान्त है कि कम काम करने से शक्ति का ह्रास कम होता है। इस प्रकार की भ्रान्त धारणाओं को अपनाने से उनके अंग निर्बल हो जाते हैं और बीमारियाँ सहज ही में घर दबाती हैं जिससे श्वास की गति बढ़कर उनकी उम्र कम हो जाती है। अतः हर एक मनुष्य का यह कर्त्तव्य है कि प्रकृति के नियमानुसार प्रतिदिन डटकर तल्लीनता के साथ अपनी शक्ति के अनुसार काम करे। इससे प्राण वायु नियमानुसार चलती रहेगी। इसी बात का समर्थन गीता भी करती है और हमें कर्मयोगी बनने का उपदेश देती है, जिसे जानना हरएक योगी और गृहस्थ के लिये परमावश्यक है। योग का ज्ञान हिन्दू-धर्म शास्त्रानुसार प्रतिदिन अवश्य करना चाहिये, जिसमें बहुत-से हमारे धार्मिक कृत्य भी सम्मिलित हैं। हम वैज्ञानिक उपकारों को भूलकर ही प्रतिदिन अवनत हो रहे हैं। आप, क्या नवयुवक और क्या वृद्ध, 'सन्ध्या' को एक झंझट समझते हैं, पर 'सन्ध्या में' सबसे सुन्दर वस्तु प्राणायाम है। इसके न करने से मानव समाज कितनी ही बीमारियों से ग्रस्त है। प्राणायाम के बिना मनुष्य की शक्ति आन्तरिक दूषित वायु के बाहर न निकलने के कारण प्रतिदिन कम होती जा रही है। यही कारण है कि हिन्दू-जाति प्रतिदिन रसातल को जा रही है। यदि हम अब भी प्राणायाम का अभ्यास करें तो अपनी वर्तमान बीमारियों से और विशेष कर अल्पायु में मृत्यु,

यक्ष्मा और श्वास की बीमारियों से बहुत शीघ्र छुटकारा पा सकते हैं। इसे जितना ही ज्यादा किया जायगा उतना ही श्वास लेने में कमी होगी। कम श्वास लेना ही आयुवृद्धि का मूल कारण है। इससे बढ़कर आयु बढ़ाने की और कोई औषधि नहीं है। विशेष करके फेफड़ों की बीमारियों का तो यह कट्टर शत्रु है। ऐसी बीमारियाँ शरीर के पास भी नहीं फटकती। यह एक ध्रुव सत्य है। यदि अधिक जीने की इच्छा हो तो प्रत्येक मानव का कर्तव्य है कि वह श्वास–प्रश्वास की गति का शरीर से अभिन्न संबन्ध समझकर मननपूर्वक अधिक-से-अधिक प्राणायाम का अभ्यास करें।

—:o:—

चन्द्र स्वर लगातार चले तो ६ माह में मृत्यु अवश्यभावी है। तीन दिन रात केवल सूर्य नाड़ी चले तो तीन मास में मृत्यु होती है। पांच घड़ी सुषुम्णा नाडी चल कर न बदले तो उसी दिन मृत्यु होती है।

मतान्तर मे एक महीने तक सूर्य नाड़ी में वायु चलता रहे तो एक रात्रि में ही मृत्यु हो जाती है।

'योग शास्त्र' के कर्त्ता श्री हेमचन्द्र आचार्य भी श्री ब्रह्मा के उक्त मत को मानते हैं। उन्होंने और भी आयु ज्ञान इस प्रकार बतलाया है।

मार्गशीर्ष मास की शुक्ल प्रतिपदा* के दिन से, जो उस मास का संक्रान्ति दिवस है, ५ दिन तक एक ही स्वर चले तो उस दिन से १८ वें वर्ष में मृत्यु होती है। शरत्संक्रान्ति (आसोज शुक्ल पक्ष प्रतिपदा) सूर्योदय से लेकर जो एक ही नाडी में ५ दिन तक पवन चले तो १५ वर्ष में मृत्यु होती है।

श्रावण महीने की शुरू तिथि (श्रावण शुक्ल १) से पांच दिन तक एक स्वर चले तो १२ वर्ष में मृत्यु होती है। ज्येष्ठ शु० १ से १० दिन तक एक ही नाडी में वायु चले तो ९ वर्ष के अन्त में मृत्यु होती है।

चैत्र महीने के पहले दिन से ५ दिन तक एक नाडी मे वायु चले तो ६ वर्ष में मृत्यु होती है।

उपर्युक्त महिनों में एक ही नाड़ी में २, ३, ४, ५ दिन श्वास बहे तो पांच दिन वायु बहने के हिसाब से जितने वर्षों में मृत्यु कही है उन वर्षों के पांच भाग

---

* नोट —गुजरात में शुक्ल पक्ष से महीना गिना जाता है अतः पहला दिन शुक्ल पक्ष १ से गिनना चाहिए क्योंकि उपर्युक्त संकलन गुजराती पुस्तकों से लिया गया है। उसी दिन को वे लोग संक्रान्ति दिवस भी कहते हैं।

करके उतने वर्ष कम कर देने चाहिये। जैसे शरद् संक्रान्ति में पाँच दिन की अपेक्षा चार दिन चले तो १५ का पाँचवां हिस्सा ३ वर्ष कम कर के १२ वर्ष बतलाने चाहिये। यदि ३ दिन चले तो दो भाग (३×२) यानि ६ वर्ष कम करके ९ वर्ष में मृत्यु कहनी चाहिये इसी तरह सब में हिसाब लगा कर वर्ष निकालने चाहिये।

जन्म नक्षत्र में चन्द्रमा हो और अपनी राशि से सातवीं राशि में सूर्य हो, अर्थात् जितनी जन्म राशि चन्द्रमा ने भोग ली हों उतनी ही उससे राशि सूर्य भोग लेवे तो पौषण काल कहा जाता है जिससे मृत्यु का निर्णय किया जाता है।

श्री हेमचन्द्र ने पौषण काल से नीचे लिखे अनुसार मृत्यु ज्ञान बतलाया है।

उस पौषण काल में यदि आधे दिन सूर्य नाडी में वायु चले तो १४ वें वर्ष में और सारे दिन सूर्य नाडी में श्वास बहे तो १२ वें वर्ष में मृत्यु होती है। उसी पौषण काल में एक रात दिन दो व तीन दिन रात सूर्य नाडी में वायु चले तो क्रम से १०, ८ और ६ वर्ष में मृत्यु होती है। यदि ४ दिन उसी तरह श्वास चले तो चार वर्ष में, ५ दिन चले तो तीन वर्ष में या १०८० दिन में। इसी तरह से सिर्फ सूर्य नाडी में ६, ७, ८, ९, १० दिन तक वायु चले तो बाकी बचे दिनों की संख्या में से क्रमशः १, २, ३, ४, ५×२४ दिन कम करते जाना चाहिये यानि २४ ४८, ७२, ९६, १२० दिन क्रमश कम कर देने चाहिए। ६ दिन सूर्य नाडी में श्वास चले तो १०८०–२४=१०५६ दिन और ७ दिन चले तो १०५६–४८=१००८ और ८ दिन चले तो १००८–७२=९३६ और ९ दिन चले तो ९३६–९६=८४० और १० दिन चले तो ८४०–१२०= ७२० दिन जीवे। इसी तरह से आगे होते चले जायगे। ११, १२, १३ १४, १५ दिन तक १ नाडी में से पवन चले तो क्रमश उपरोक्त ढंग से १, २, ३, ४, ५×२४ दिन

बाकी बचे दिनों में से कम करते जाना चाहिये। स्पष्ट अर्थ यह है कि ११ दिन सूर्य नाडी में वायु चले तो ६६६, १२ दिन चले तो ६४८, १३ दिन चले तो ५७६, १४ दिन चले तो ४८०, और १५ दिन चले तो ३६० दिन में मृत्यु होती है। इसी तरह १६, १७, १८, १९, २० दिन पर्यन्त एक नाडी में हवा चले तो १, २, ३, ४, ५×१२ उपर्युक्त ढंग से कम करते जाना चाहिए अर्थात् १६ दिन वायु चले तो ३४८, १७ दिन चले तो ३२४, १८ दिन चले तो २८८, १९ दिन चले तो २४० और २० दिन चले तो १८० दिन में मृत्यु होती है।

२१, २२, २३, २४, २५ दिन सूर्यनाडी में एक समान वायु चले तो १, २, ३, ४, ५ ×६ कम करके फल कहना चाहिये। पोषण काल में २१ दिन सूर्यनाडी में श्वास बहे तो १७४, २२ दिन बहे तो १६२, २३ दिन बहे तो १४४ २४ दिन बहे तो १२० और २५ दिन बहे तो ९० दिन में मृत्यु होती है।* इसी प्रकार आगे समझना चाहिए।

यदि पोषणकाल में इस प्रमाण से चन्द्र नाडी में हवा चले तो व्याधि होती है। व्याधि शब्द में इनका ग्रहण होता है — मित्र विनाश, महालय, प्रदेश-गमन, धनविनाश, पुत्र-नाश, राज्य नाश, अकाल आदि।

इस प्रमाण से शरीर में रहने वाले चन्द्र सूर्य सम्बन्धी प्रत्येक वायु का अभ्यास कर के आयु शेष का निर्णय करना चाहिए और कान, मुखाकृति आदि बाहर के लक्षणों का भी अच्छी तरह ध्यान रख कर निर्णय देना चाहिए।

---

* मालूम होता है कि श्री हेमचन्द्र ने वर्ष के ३६० दिन व्यावहारिक तौर से गिन लिये हैं।

नेत्र से आयु ज्ञान

वाम नेत्र में सोलह पखुडी वाला चन्द्र सम्बन्धी कमल है। दाहिने नेत्र में १२ पखुड़ी वाला सूर्य सम्बन्धी कमल है। इसको अच्छी तरह से जानना चाहिये। नमें आख के ऊपर, नीचे, दायें, बायें जुगनू के समान चमकने वाली चार-चार पखुडी होती हैं। अपनी अंगुली से इनको गुरूपदेशानुसार दबाकर देखना चाहिये। चन्द्र (वामनेत्र) सम्बन्धी कमल की चारों पखुड़ियों में से यदि नीचे वाली पखुडी न दीखे तो ६ माह में, भ्रकुटी के पास वाली न दीखे तो ३ मास में, पीछे यानी कनपटी की तरफ की पखुड़ी न दिखाई दे तो दो मास में और नासिका की तरफ की पखुड़ी न दिखाई दे तो १ मास में मृत्यु होती है। इसी तरह दक्षिण नेत्र को अङ्गुली से दबाने पर सूर्य सम्बन्धी १२ पखुड़ियों वाला कमल दिखाई पड़ेगा। इसमें भी अपनी अंगुली से आँख के ऊपर नीचे, दाईं बाईं ओर की जुगनू के समान चमकने वाली चार पखुड़ियों को दबाकर देखना चाहिये। यदि नीचे वाली पखुड़ी न दीखे तो १० दिन में, ऊपर की न दीखे तो ५ दिन में, कान के तरफ की न दिखाई दे तो ३ दिन में, नाक की तरफ की पखुडी न दीखे तो २ दिन में मृत्यु होती है। अंगुली से आंखों को दबाने से यदि दोनों कमलों की पखुड़ियाँ दिखाई दें तो सौ दिन में मृत्यु होती है*। दोनों आंखों की पंखुड़ियों के दीखने से मृत्यु का होना हमारी समझ में नहीं आया।

कान से आयु का ज्ञान

श्री हेमचन्द्र आचार्य कहते हैं कि हृदय में आठ पखुड़ी वाले कमल का

---

* एतान्यपि समस्तानि [illegible] दृष्टोऽपि हि पद्मयो।
दलानि यदि नेक्षेत मृत्युर्दिनशतात्तदा ॥

ध्यान करने के बाद हाथों की तर्जनी अंगुलियों को कानों के दोनों सुराखों में डालने पर ओर से जलती हुई अग्नि के समान धपधपाहट जैसी आवाज न आवे और वही आवाज ५, १०, १५, २०, २५ दिन तक सुनाई न दे तो क्रमशः ५, ४, ३, २, १ वर्ष में मृत्यु होती है। यदि ६ दिन से १६ दिन तक उस तरह का शब्द सुनाई न दे तो क्रम से १, २ ३, ४, ५,··· ×२४ दिन ५ वर्षों में से कम रह जाता है। अर्थात् ६ दिन तक न मालूम हो तो ५ वर्षों के दिनों में से १×२४ यानि २४ दिन कम होंगे। यदि ७ दिन न मालूम पड़े तो ६ दिन मालूम न पड़ने पर जितने दिन आयें हों उनमें से २×२४ (४८) कम करना चाहिये। इसी तरह १६ दिन पर्यन्त समझ लेना चाहिए अर्थात् १, २, ३, ४, ५, ··×२४ आखिर के दिन आवें उनमें से कम कर लेना चाहिए। इस प्रक्रिया का सुगम स्पष्टीकरण यों समझना चाहिए कि ऊपर दी हुई दिनों की संख्या आयु की पूर्ण वर्षों की संख्या से सम्बन्धित है। दिनों की बीच की संख्या अर्थात् ६–६, ११–१४, १६–१६, तथा २१–२४ जो १६ राशियां होती हैं, उनमें ऐसा शब्द सुनाई न देने से उक्त वर्षों में क्रमशः २४, ७२, १४४, २४० दिन प्रत्येक वर्ग के वर्षों में से घटा देना चाहिए। यथा, यदि ६–६ दिन सुनाई न दे तो ५ वर्ष यानि १८०० दिन में से २४ आदि घटा देना चाहिए और ११–१४ की सूरत में ४ वर्ष में से २४ आदि क्रमशः घटा देना चाहिए।

दूसरे लक्षणों से आयु का ज्ञान

ब्रह्मद्वार में फैलती हुई धूम–मालिका यदि ५ दिन देखने में न आवे तो तीन वर्ष में मृत्यु होती है। धूम–मालिका का ज्ञान गुरु–गम्य है। इसलिए इसका ज्ञान विशेष ज्ञाता से ही प्राप्त करना चाहिये। काल चक्र जानने के लिए सुदी १ के दि॰ पवित्र होकर अपने दाहिने हाथ को 'शुक्ल पक्ष है' ऐसा समझे तथा कनिष्ठिका

अगुली के नीचे का पेरवा (पर्व) प्रतिपदा, बीच का षष्ठी और ऊपर वाला एकादशी समझे। अगूठे के नीचे के पर्व को पञ्चमी, बीचले को दशमी, और ऊपर वाले को पूर्णिमा तिथि समझे। इसी तरह अनामिका अगुली के नीचे के हिस्से को द्वितीया, बीच को तृतीया, और ऊपर वाले को चतुर्थी, मध्यमा अगुली के नीचे के भाग को सप्तमी, मध्य भाग को अष्टमी, ऊपर के भाग को नवमी समझे। तर्जनी अंगुली के नीचे के भाग में द्वादशी, मध्य में त्रयोदशी और ऊपर वाले में चतुर्दशी की कल्पना करनी चाहिए। इसी तरह से बायें हाथ को कृष्णपक्ष समझकर उसकी अगुलियों में तिथियों की कल्पना करनी चाहिए।

मनुष्यों को निर्जन प्रदेश में जाकर पद्मासन लगाकर मन में प्रसन्नता पूर्वक ध्यान करके हाथों को कमल की पखुड़ियों के आकार के समान रखकर हाथ के अन्दर काले वर्ण के एक बिन्दु का चिन्तन करना चाहिए।

तदनन्तर हाथ खोलते समय जिस अगुली के अन्दर कल्पना की हुई अंधेरी तथा शुक्ल तिथि में काला बिन्दु दिखाई पड़े तो उसी तिथि के दिन उसकी मृत्यु होगी।

विषुवत् समय अर्थात् जिस रोज दिन और रात बराबर हो उस समय जिसकी आँख फड़के तो उसकी आठ पहर में मृत्यु होती है। इसका अर्थ कई यह भी करते हैं कि सूर्य और चन्द्र दोनों नाड़ियाँ एक साथ चलती हों और विषुवत् काल में आंख फड़के तो एक अर्ध रात्रि में मृत्यु होती है। केवल वायु के विकार से फड़के तो पूर्व लिखित दोष न होगा। स्वाभाविक फड़कने से ही ऐसा होगा। जल से भरे हुए कांसी के बर्तन में सूर्य का बिम्ब यदि दक्षिण, पश्चिम, उत्तर, पूर्व इन दिशाओं में खण्डित दिखाई दे तो क्रमशः ६, ३, २, १ मास में मृत्यु होती है। यदि सूर्य बिम्ब के मध्य में छिद्र दिखाई दे तो दश दिन में और धुंए से आच्छादित दिखाई दे तो उसी दिन मृत्यु होती है।

शुक्ल पक्ष की रात्रि में या दुबह खड़ा होकर अपने हाथ लम्बे करके अपनी छाया देखकर धीरे धीरे दृष्टि उठाकर आकाश में अपनी छाया देखने का प्रयत्न करे। उस समय वहां सफेद आकृति दिखलाई पड़ेगी। यदि उस आकृति का सिर देखने में न आने तो उसकी मृत्यु शीघ्र हो जाती है। यदि उसका बायाँ हाथ देखने में न आवे तो उसकी स्त्री या पुत्र का नाश होगा। यदि दाहिना हाथ दिखाई न दे तो भाई का नाश होगा। हृदय न दिखाई दे तो स्वयं का मरण होगा। पेट का भाग न दीखे तो धन-नाश। गुह्य स्थान न दीखे तो अपने पूज्य वर्ग में से किसी का नाश। यदि दोनों जंघाएँ न दिखाई पड़ें तो व्याधि। पैर न दीखे तो प्रदेश गमन और यदि सारा शरीर न दिखलाई दे तो उसी समय उसकी मृत्यु हो जायेगी।

जो व्यक्ति रोहिणी नक्षत्र, चन्द्र-लाञ्छन, छाया पथ, आकाश, ध्रुव, देवताओं का मार्ग, यानि सप्तर्षि मण्डल, तारा का मण्डल, अरुन्धती, चन्द्रमा, शुक्र, अगस्त्य इनमें से एक को भी बहुत प्रयत्न करने पर भी नहीं देख सके तो वह एक वर्ष (१२ मास) के अनन्तर निश्चय ही काल का ग्रास बनता है। परन्तु कई आचार्यों का मत है कि अरुन्धती जिह्वा को, ध्रुव नासिका के अग्र भाग को, विष्णुपद आँख के कोये को, (कनीनिका) और मातृमण्डल भृकुटी को कहते हैं। ये चारों आयु के नाश होने पर दिखाई नहीं देते। जिस मनुष्य के छींक, टट्टी, वीर्यपात व मूत्र एक साथ हो जावे तो एक वर्ष के अन्त में उसकी भी मृत्यु हो जाती है।

एक यह भी मत है कि, जो मल, मूत्र व अपानवायु एक साथ ही विसर्जन करे तो उसकी १० दिन में मृत्यु हो जाती है।

जिस व्यक्ति को सूर्य, चन्द्र के बिम्ब की किरणें न दिखाई पड़ें और आग निस्तेज दिखाई दे वह नर ११ मास के बाद जीवित नहीं रह सकता। जो सूर्य

को बिना छिद्र का और अग्नि को सछिद्र देखे वह भी ११ मास के बाद मर जाता है।

जिस मनुष्य को स्वप्न या जाग्रतावस्था में बादलों में मल मूत्र, स्वर्ण व चाँदी दीख पड़े वह दस मास से अधिक जीवित नहीं रह सकता। जो वृक्ष के अग्रभाग में गन्धर्वनगर देखे या प्रेत पिशाच देखे तो उसकी भी दस महीने में मृत्यु हो जायगी।

जो व्यक्ति दीपक को स्वर्ण सरीखा कान्तिमान परन्तु कभी कभी काले रंग का देखे और सब बातें विपरीत देखे वह नौ मास से अधिक जीवित नहीं रह सकता।

जो मनुष्य सहसा मोटे से पतला और पतले से मोटा, क्रूर से दयावान, दयावान से क्रूर, कृष्ण वर्ण से स्वर्णरंग, शूर से डरपोक, अधार्मिक से शान्त विचारवान् हो जावे वह आठ मास जीता है। किसी किसी का विचार है कि जो मनुष्य सहसा मोटे से पतला व पतले से मोटा हो जाता है वह १ ही मास में मर जाता है।

जिसकी हथेली में व जिह्वा के मूल में दर्द हो, रुधिर काला पड़ जावे तथा सुई चुभाने से दर्द न हो वह केवल ७ मास जीवित रहता है।

रत्न–कान्तिवला, टेढ़ा-मेढा सूक्ष्माकृति सर्प अपनी ओर आता दिखाई न दे तो उसकी भी छठे महीने में मृत्यु हो जाती है। मैंने भी यह अनुभव कर ऐसा देख लिया है। अपिच हजारों मोती आकाश में चलते हुए भी दिखाई पड़ते हैं। दाहिने हाथ की मुट्ठी बांध कर नाक के ठीक सांध में कपाल पर रख कर नीचे की ओर उसी हाथ की कोहनी तक देखने से हाथ बहुत ही पतला दिखाई देता है। जिस दिन हाथ की कलाई दिखाई न पड़े और मुट्ठी हाथ से अलग प्रतीत होवे उस दिन से ६ मास बाद उसकी भी मृत्यु हो जाती है।

जिसके स्तनों की त्वचा शून्य हो जावे तो वह निश्चय ही पांच महीने में मर जाता है।

यदि किसी के सिर पर वेग से गिरगिट (किरड़कांटिया) चढ़ कर चला जावे और जाते समय अपने शरीर से तीन प्रकार से चेष्टा करे तो उसकी भी पांच महीने बाद मृत्यु हो जाती है।

जिसकी आंखों की ज्योति में प्रकाश न हो, दोनों नेत्रों में पीड़ा रहे, वह मानव केवल ४ मास जीवित रहता है। जिस नर की नाक बांकी, आँख गोल और कान अपनी जगह से शिथिल पड़ जावे वह भी चार महीने के बाद मर जाता है।

स्नान के बाद जिसके हृदय, कपाल और पैर तत्काल सूख जाय वह तीन मास में मर जाता है। 'शिवस्वरोदय' में कपाल के स्थान में हाथ लिख कर बताया है कि वह दश दिन तक जीवित रहता है। परन्तु 'योग शास्त्र' भाषान्तर के १६५ श्लोक में लिखा है कि हृदय और पैर स्नान के बाद तुरन्त सूख जावें तो ६ दिन में ही मृत्यु हो जाती है। इस सम्बन्ध में इस विषय के पूर्ण ज्ञानी व योगियों से ही पता लगाना चाहिए।

जिसके दांत तथा अण्डकोष दबाने से भी पीड़ित न हों अर्थात् शून्य हो जावें वह तीन मास में मर जाता है।

वह मानव केवल दो मास जीवित रहता है जो तारों को उनके वास्तविक रूप में न देखे और रात में इन्द्र धनुष देखे। जमीन में छिद्र, जीभ काली, मुख लाल कमल के समान दीख पड़े, तालु कम्पायमान, मन में शोक हो, शरीर में अनेक प्रकार के वर्ण दिखाई दें और नाभि अकस्मात् ऊँची उठ आवे तो दो महीने में उसका भी मरण हो जाता है।

पैर तथा घुटनों में जिसको स्पर्श का ज्ञान भी न हो उस नारी ? मास में मृत्यु हो जाती है। जीभ स्वाद को न जान सके, मादण में बार बार स्वर कम्पन हो, कानों से सुनाई न दे, नाक गन्ध न जाने, नेत्र सदा फड़कें, देखी हुई वस्तु में भ्रम होवे, दर्पण या पानी में अपनी आकृति न दिखाई दे, बादल के बिना बिजली दिखाई पड़े, कारण बिना ही मस्तक जला करे इन, कुत्ता और मोर में से कोई भी मैथुन करते दिखाई पड़े तो उस मनुष्य की भी एक मास में मृत्यु हो जाती है।

जिसकी कनिष्ठिका (सबसे छोटी) अंगुली अथवा मध्यमा अंगुली काली हो जावे वह १८ दिन जीवित रहता है।

में जल विन्दु न आवे तो १० दिन में मरण होता है।

जिस मनुष्य के फुत्कार के साथ श्वास बाहर गर्म मालूम पड़े, हिलने फिरने की शक्ति कमजोर हो जावे और शरीर के पांचों अंग ठंडे हो जावें तो उसकी १० दिन में मृत्यु हो जाती है।

आंख बन्द करके अङ्गुली से आंख का एक किनारा दबाने से आंख के भीतर एक चमकता हुआ तारा दिखाई देगा। जिस दिन यह तारा न दिखाई दे उस दिन से दस दिन में मृत्यु हो जायेगी। केवल इडा या पिंगला में ही वायु चले तो उसकी भी दश दिन में मृत्यु हो जावेगी। आधा शरीर ठंडा और आधा गर्म हो जाव, अकारण ही ज्वाला जले तो सात दिन में ही उसका मरण हो जाता है।

अगर अकेली सुषुम्णा नाडी में लम्बे वक्त तक वायु चले तो मरण शीघ्र होता है। भ्रुकुटी न दीखे तो नौ दिन, कानों के अन्दर का शब्द न सुनाई दे तो ७ दिन, तारे न दीखें तो ५ दिन, नासिका न दिखाई दे तो ३ दिन, जीभ न दिखाई दे तो १ दिन में उस नर का मरण होता है।

किटकिटा कर दांत घिसा करे, मुर्दे के समान शरीर में से दुर्गन्ध निकले, शरीर का वर्ण विकृत हो जावे तो उसकी भी ३ दिन में मृत्यु होवे।

इडा, पिंगला, सुषुम्णा नाडियों में वायु एक साथ चलता रहे तो दोपहर बाद मृत्यु हो जाती है।

जो व्यक्ति मुख से श्वास ले उसकी मृत्यु चार घण्टे में हो जाती है।

जिसका हुँकार ठण्डा हो और फुत्कार अग्नि के समान हो तो उसकी रक्षा धन्वन्तरी भी नहीं कर सकता।

इस अध्याय में आंख, नाक, कान आदि के लक्षणों का परिज्ञान मृत्यु ज्ञान में सहायक होने के कारण ही लिखा गया है। स्वरज्ञान के निर्णय को ये बाह्य लक्षण पुष्ट करते हैं। स्वर योगी स्वर और शरीर के बाह्य अंगों के स्फुरण आदि चिन्हों से अपनी मृत्यु को टाल सकता है और बुला भी सकता है। यदि वह चाहे तो संसार की भलाई के हेतु अपने स्वर योग के बल से १२० वर्ष जीवित रह सकता है।

आपत्ति, रोग परिज्ञान और उनका उपचार

यह पहले बताया जा चुका है कि किस समय, किस तिथि को कौनसा स्वर चलना चाहिए। जब कभी कोई रोग या आपत्ति आती है तो विशेष रूप से सूर्योदय तिथि से उल्टा स्वर बहने लगता है और गौणरूप से दिन और रात में भी दाहिना बांया स्वर ज्यादा या कम चला करता है। अत जब कभी सूर्योदय के समय तिथि विरुद्ध स्वर चले तो उसी समय से एक घण्टे तक शुद्ध हवा में ॐ मन्त्र का जप करे। ऐसा करने से यदि प्राण ठीक नहीं चल रहा है तो वह नियमानुसार चलने लगेगा। ॐ मन्त्र से प्राण शुद्ध होने का विवेचन पूर्ण रूप से ऊपर किया जा चुका है। जिस समय बीमारी आवे उस समय जो स्वर चल रहा हो उसको उस समय व उतने दिन तक बन्द रखना चाहिए जब तक कि बीमारी ठीक न हो जावे। ऐसा करने से बीमारी का प्रभाव नष्ट हो जावेगा और वह शान्त हो जावेगी। इस तरह दुष्प्रभाव पैदा करने वाली औषधि सेवन से बच जावेंगे।

यदि शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा को बांया स्वर न चल कर दाहिना स्वर चले तो पूर्णिमा तक कोई न कोई रोग, कलह या हानि अवश्य होगी। इसी तरह कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा को दक्षिण स्वर न चल कर चन्द्र स्वर चले तो अमावस्या तक सर्दी से रोग या हानि आदि से कष्टों की सम्भावना है।

इसी प्रकार लगातार दो पक्ष तक यदि उल्टे स्वर चलें तो अपने पर आपत्ति, हानि या प्रियजन की भयकर बीमारी या मृत्यु की सम्भावना रहती है। यदि तीन पक्ष तक लगातार ऐसा होता रहे तो अपनी मृत्यु निकट होती है और यदि तीन दिन ऐसा हो तो कलह या रोग की सम्भावना होती है। यदि लगातार १ मास तक वाम स्वर विपरीत चले तो महारोग की सम्भावना होती है और यदि स्वर के समय का परिवर्तन अर्थात् घटाबढ़ी हो तो निम्नलिखित शुभा शुभ फल होते हैं।

शुभ फल

१. चन्द्रस्वर लगातार ४ घड़ी चले तो किसी अचिन्त्य वस्तु की प्राप्ति,
२. ,, ,, ८ घड़ी ,, ,, सुखादि की प्राप्ति,
३. ,, ,, १४ घड़ी ,, ,, प्रेम, मैत्री आदि की प्राप्ति,
४. ,, ,, १ अहोरात्र ,, ,, ऐश्वर्य, वैभव आदि की प्राप्ति,
५. ,, ,, २ दिन तक आधे आधे प्रहर दोनों स्वर चलते रहें तो यश और सौभाग्य की वृद्धि।

६. यदि चार, आठ, बारह, बीस दिन तक रात दिन चन्द्र स्वर चलता रहे तो दीर्घायु और ऐश्वर्य की प्राप्ति।

७. यदि नित्यप्रति दिन में चन्द्र और रात में सूर्यस्वर चले तो १२० वर्ष की आयु होती है।

अशुभ फल

यदि चन्द्रस्वर लगातार—

१. १० घड़ी चले तो शारिरिक कष्ट होता है,
२. १२ ,, ,, ,, अनेक शत्रु पैदा होते हैं,

३. ३,२ दिन ,, ,, रोग होते हैं,

४. ५ दिन ,, ,, उद्वेग पैदा होता,

५. १ मास ,, ,, धन का नाश होता है,

यदि सूर्यस्वर लगातार—

१. ४ घड़ी तक चलता रहे तो बिगाड़ या वस्तु हानि होती है,

२. ९ ,, ,, ,, सज्जन से द्वेष होता है,

३. २१ ,, ,, ,, सज्जन विनाश होना है,

४. रात दिन चले तो आयु क्षीण और मृत्यु होती है।

उपर्युक्त बातें शीध्रा से ली गई हैं और इनमें से प्राय सबका मैंने स्वयं अनुभव किया है।

'शिवस्वरोदय' के ८२, ८३, ८४ वें श्लोक में हमेशा विपरीत स्वर के लक्षण दिये हैं। यदि प्रात काल से स्वरों का विपरीत उदय हो तो पहले समय में मनका उद्वेग, दूसरे में मन की हानि, तीसरे में बहिर्गमन, चौथे में इष्ट-वस्तु नाश, पाँचवें में राज विध्वंस, छठे में सम्पूर्ण द्रव्य नाश, सातवें में बीमारी का दुःख और आठवें में मृत्यु होती है। यदि आठ दिन तक प्रात मध्याह्न व साय स्वर विपरीत चले तो हानि होती है।

स्वर-ज्ञान से वैद्यको दोष की पहिचान

नाडी गति एक मिनिट में ३० से २५० तक रहती है। बहुत कम नाड़ागति हृदय व मस्तिष्क की बीमारी प्रकट करती है। बहुत ज्यादा गति उदर के किसी हिस्से की बीमारी बतलाती है। स्वर चैतन्य की तरफ से वैद्य नाड़ी देखे। रोगी की जो नाडी (चन्द्र सूर्य यानि इडा पिंगला) चल रही हो उसी हाथ की नाड़ी

देखने से रोग का निदान ठीक होता है। सुषुम्णा में नाडी देखना दिखाना निषेध है। अग्नि तत्व में नाडी जल्दी जल्दी व बारीक चलती है। आकाश तत्व में दबी हुई, हल्की व बारीक और संख्या में अधिक बहती है। जल और पृथ्वी तत्व में नाडी मन्द मन्द, इकसार तादाद में मामूली दोनों अङ्गुलियों के नीचे इकसार धार वाली होती है।

रोगी को सीधा सुलाकर उसकी नासिका के पास दोनों अङ्गुलियों से जांच करो यदि चन्द्रस्वर हो और तिथि चन्द्र की न हो तो कफ दोष की बीमारी है व कफ की नाड़ी दिखाई देगी। यदि सूर्यस्वर हो और तिथि उल्टी हो अर्थात् तिथि सूर्यस्वर की न हो तो पित्त दोष। वातादि दोषों में सुषुम्णा की चाल मालूम पड़ेगी। द्वन्द्वज दोषों में जिस दोष की अधिकता होगी उस नाड़ी का स्वर तेज चलेगा और दूसरी नाडी कम चलेगी। इससे वैद्य सहज ही में व्याधि का निदान कर सकते हैं।

रोग और उनके प्रतिकार

ज्वर—जब शरीर में हरारत प्रतीत हो तो जो स्वर चलता हो उसे उतने ही दिन बन्द रखे जितने दिन तक शरीर पूर्ण स्वस्थ न हो जाय। इसके लिये नथुने में नरम रुई रख देने से अभीष्ट स्वर बन्द किया जा सकता है।

सिर दर्द—सिर दर्द मालूम होते ही सीधा लेटकर दोनों हाथों को नीचे की ओर लम्बा फैलादे और फिर किसी से दोनों हाथों की कोहनियों को रस्सी के द्वारा जोर से बन्धवाले। ऐसा करने से ५—७ मिनट में तमाम दर्द शान्त हो जायेगा। दर्द मिटने पर रस्सी खोल दें। बिस्तर छोड़ते ही नासा-पुट से सिरदर्द रोगी को शीतल जल पीना चाहिए। उसका तरीका यह है कि एक बर्तन में ठण्डा जल भर कर उसमें नाक डुबाकर धीरे धीरे जल खींचना चाहिए।

तक चलते हुए स्वर को बन्द करके दूसरे स्वर को चलाने का अभ्यास करना चाहिए। इस रोग में जितना ही स्वर बदलने का अभ्यास किया जावेगा उतना ही अधिक और शीघ्र लाभ होगा। स्वर परिवर्तन के विषय में कइयों का तो यहाँ तक मत है कि यदि किसी ने भूल से विष खालिया हो और वह चन्द्र स्वर या जलतत्त्व चला दे तो जहर का कुछ भी प्रभाव नहीं होगा।

अन्य उपयोगी उपचार

परिश्रम से उत्पन्न थकावट को दूर करने और धूप की गर्मी से शान्त होने के लिए कुछ समय दाहिनी करवट लेटने से थकावट या गर्मी दूर हो जाती है क्योंकि ऐसे लेटने से सूर्य स्वर (गर्म नाडी) बन्द होकर चन्द्र स्वर (ठण्डी नाडी) चलने का अवसर मिलता है।

नित्य भोजनोपरान्त लकड़ी की कंघी से बाल सँवारने से सिर के रोग नाश होते हैं और बाल सफेद नहीं होते।

नित्य प्रातःकाल आधा घण्टा पद्मासन से बैठ कर दाँतों की जड़ में जीभ का अग्र भाग जमाये रखने से कोई भी रोग नहीं होता।

नित्य आधा घण्टा सिद्धासन से बैठकर नाभि पर दृष्टि जमाने से स्वप्नदोष सर्वथा नष्ट हो जाता है। निरन्तर ६ मास करने पर भयंकर से भयंकर स्वप्नदोष भी बिना औषधि के ठीक हो जाता है।

सुबह आँख खुलते ही जिस तरफ का स्वर चल रहा हो उस ओर की हथेली मुँह पर फेर कर उसी ओर का पैर प्रथम जमीन पर रखने से इच्छानुसार सिद्धि

होती है।

जिन्हें विशेष अजीर्ण रहता हो वे प्रातः भोजन से पूर्व सूर्य स्वर में पान के पत्ते में १० तक काली मिर्चें चबाकर खावें। इस तरह १५-२० रोज करने से भयंकर अजीर्ण भी दूर हो जाता है।

खून साफ करने की विधि

यदि किसी कारण खून बिगड़ गया हो और शरीर में रक्त विकार से फोड़े फुन्सी होते हों तो कुछ दिन नियम पूर्वक शीतली कुम्भक करने से रक्त साफ होकर चर्म रोग बिलकुल मिट जायेंगे। शीतली कुम्भक का उपाय यह है कि प्रातः या सायं स्वच्छ वायु में सूर्य के सामने सीधे खड़े होकर मुँह को थोड़ा खोलकर जीभ को थोड़ी बाहर निकाल कर गहरा श्वास अन्दर ले जाय और प्रश्वास नाक से निकालें और इस प्रकार ५-७ मिनिट तक करें।

यौवन स्थिरीकरण उपाय

इस अध्याय में पहले हो चुका है जरूर होती हैं। मैंने अपने सूक्ष्म अनुभव से रोग निराकरण के उपाय स्वर से ही निकालकर अनेक बीमारियों को दमन करने में सफलता प्राप्त की है। जिस बीमारी में पूरे श्वास भरने व छोड़ने से नुकसान न हो तो श्वास निकालते समय पेट को इतना सिकोड़ना चाहिए कि वह रीढ की हड्डी से चिपक जाय और फुलाते समय इतना फुलाया जावे कि वह आगे आ जावे इससे उस बीमारी का नाश आवश्यम्भावी है।

बीमारी की पहचान

दोनों स्वर थोड़ी देर चलाकर परीक्षा कर लेनी चाहिए और जिसमें अधिक शान्ति मिले उसी स्वर को चलाना चाहिए ताकि आराम मिले और बीमारी का नाश हो। यदि बायें स्वर से शांति मिलती है तो गर्मी से हुई उत्पन्न बीमारी और दक्षिण स्वर से शांति मिलती है तो सर्दी से उत्पन्न बीमारी समझनी चाहिए।

किसी किसी स्वर ज्ञानी का मत है कि रोगी के समय जो स्वर चल रहा हो, चिकित्सक अपने उसी स्वर को चला कर उसके शुद्ध हो जाने पर कांच या मिट्टी के बर्तन में स्वच्छ जल को सात बार स्वर से आमन्त्रित करे, परन्तु गिलास नाक की सीध में ६ इंच दूर रखे जिससे श्वास वहाँ तक पहुँच सके और जल पर अपना प्रभाव डाल सके। ६ इञ्च दूर रखने का कारण यह है कि यदि कोई नाक से बीमारी निकले तो वहां तक जाते शुद्ध हो जावे। इस पानी को दो दो घण्टे से आध आध छटाँक १२ घण्टे तक बीमार को पिलावे, तो वह ठीक हो जावेगा। बाद में दूसरा पानी तैयार करे। यदि रोगी दूर हो तो फलालेन के कपड़े को इक्कीस बार स्वर से मन्त्रित करके उसके पीड़ित अङ्ग पर रखने के लिये भेजना चाहिए। यह कपड़ा दो सप्ताह तक काम आ सकता है। स्याही चट को भी मन्त्रित करके भेजा जा सकता

है। बच्चों के लिए तावीज या रक्षा सूत्र मन्त्रित किये जा सकते हैं और इसी तरह औषधियां भी।

पुरानी रुई की गोली बना कर नाक में डाट कर रात को सूर्यस्वर और दिन को चन्द्र स्वर चलावे। यदि कोई २० वर्ष तक इसी प्रकार स्वर चलावे तो फिर किसी प्रकार का विकार न होगा।

स्वप्नदोष — यह रोग आजकल ९९९ प्रति सहस्र मनुष्यों में पाया जाता है। इसके निवारण के लिए नीचे लिखा अभ्यास करना चाहिये। वीर्य व मूत्र निर्गत होते समय लिंग व गुदा द्वार की संकोचन व प्रसारण क्रिया होती है। लिंग में गति देख कर जैसे जैसे गुदा द्वार सकुचित होगा वैसे ही लिंग में अधिकाधिक गति आवेगी और उसमें से वीर्य तथा मूत्र गिरने न पावेंगे। मूत्र विसर्जन के समय गुदा संकुचित करने से मूत्र एक दम बन्द हो जावेगा। अब यदि गुदा द्वार की सकोचन प्रसारण की गति अपने वश में रहे तो वीर्य स्तम्भन करने या वीर्य–पात की गति को अपने वश में रखने के लिए कुछ भी देर नहीं लगेगी।

सिद्धासन तथा प्राणायाम — गुदा द्वार और अण्डकोष के बीच में बायें पैर की एड़ी लगाओ। दाहिने पैर की एड़ी मूत्र नली की जड़ में ऊपर से लगाओ। (शुरू में तकलीफ होगी) सीध के बीच में तकिया रखो। आसन पूर्ण करने पर दोनों पैरों के मध्यिस्थ मिल जावेंगे। इसके उपरान्त प्राणायाम करो। जिस नथने से श्वास निकलता हो उससे श्वास भीतर खींचो और गुदा द्वार को संकुचित करो, क्योंकि उस समय ढीला करने की इच्छा हो जाती है। थोड़े से प्रयत्न से सफलता मिलेगी। फिर दोनों नथुनों को बन्द करो। पेट के भीतर का श्वास बाहर न निकालो। पेट में गति दो अर्थात् मूत्र नली के द्वारा कोई पदार्थ पम्प की तरह पेट में खींच रहे हो

ऐसा उपाय करो । इस प्रकार पेट छोटा बड़ा करो । यह काम तब तक करो जब तक श्वास भीतर रहे । फिर धीरे धीरे श्वास निकालो । श्वास निकालते समय पेट की गति बन्द कर दो । गुदा द्वार पहले की तरह ही सकुचित रक्खो । पेट में गति देते समय गुदा सकुचित ही रहे । श्वास दूसरे नथुने से धीरे धीरे बाहर छोड़ना चाहिए । पहले मास में तीन प्राणायाम, फिर १५ तक करो । इससे शुक्रवृद्धि होकर शरीर में बल, बुद्धि अधिकाधिक विकसित होते हैं । गुदा द्वार वश में होने से स्वप्नदोष भी न होगा ।

प्राणायाम करते समय में श्वास जबरन पेट में रखने की आदत न डालो, किसी प्रकार की जल्दी न करो । प्राणायाम शुद्ध हवा में करो और जोर से बहती हुई हवा को पीठ देकर धीरे धीरे श्वास लो जिससे कीड़े मच्छर आदि श्वास के साथ न जावें । पेट की नसों में यदि दर्द हो तो घी की मालिस करो । स्त्री-प्रसंग एक या दो बार ही एक मास में करो । स्वप्न दोष के निवारण के विषय में एक उपाय यह है कि टट्टी से पहले मूत्रेन्द्रिय पर धीरे धीरे शीतल जल की धारा छोड़ो और गुदा द्वार को संकुचित रक्खो । पांच छः मिनिट बाद मल त्याग करो । बाद में तीन मिनिट तक उपरोक्त क्रिया फिर करो ।

आंख की ज्योति बढ़ाने का योग

टट्टी जाने के बाद व भोजन के पश्चात् मुंह में खूब पानी भरलो । फिर हथेली में ठण्डा जल भर कर खुली हुई आंखों पर छिड़को । पांच सात बार ऐसा करने से बहुत लाभ होगा ।

दिन में चन्द्र और रात में सूर्यस्वर की आवश्यकता

दिन में चन्द्र स्वर और रात में सूर्य स्वर क्यों चलाना चाहिए, इसका कारण यह है कि दिन गर्म होने से उसमें चन्द्र स्वर की जरूरत है, क्योंकि यह शीतल होता है। रात में उष्ण यानि सूर्य स्वर चलाने की आवश्यकता है। इससे शारीरिक स्वस्थता बनी रहेगी। यह हर ऋतु और हर प्रदेश में ऐसा ही देखने में आया है। वह पुरुष उत्तम योगी है जो दिन भर सूर्य स्वर बन्द करके चन्द्र स्वर और रात को चन्द्र स्वर बन्द करके सूर्य स्वर चलाता है। इससे शरीर का पोषण तथा वृद्धि होती है। ऐसे पूर्ण अभ्यस्त योगी के षट्चक्र में चन्द्रमा अमृत गिराता है। इस प्रकार के स्वराभ्यासी को तो कोई रोग नहीं होता है और उसके लिये सुख-दुःख, मानापमान, आशा-निराशा, मित्रता-शत्रुता, कोप-अकोप, आदि द्वन्द्व एक जैसे हैं। सारांश यह है कि इस यौगिक क्रिया से वह भविष्यवक्ता एवं आत्मवादी होकर सच्चिदानन्द का भान करता हुआ मोक्षाधिकारी हो जाता है और संसार में रहने वाले ऐसे पुरुष ही पूर्ण योगी कहे जाने के अधिकारी होते हैं।

दीर्घायु

प्राणायाम द्वारा जितने श्वास कम लिए जायेंगे अर्थात् जितनी देर श्वास अन्दर व बाहर रोका जावेगा उतनी ही उस मनुष्य की आयु बढ़ेगी। उदाहरणार्थ-एक पुरुष १५ बार प्राणायाम करता है, उसमें दो मिनिट श्वास को रोकता है। इस तरह तीस मिनिट में १५ बार श्वास लेता है और एक मिनिट में १५ बार श्वास लेने माने गये हैं, इस तरह से उसने २९ मिनिट अपनी आयु में वृद्धि की। परिणाम यह निकला कि हर मानव प्राणायाम द्वारा उम्र बढ़ा सकता है।

दिन में जब कभी समय मिले तो इच्छानुसार स्वर परिवर्तन करना चाहिये, क्योंकि इससे चिर-यौवन प्राप्त होता है।

यदि शरीर में किसी तरह की हरारत हो और उससे बीमारी होने की आशंका हो तो उस समय जो स्वर चल रहा हो उस स्वर को ऊपर वर्णित ढंग से तब तक रोके रहो, जब तक वह हरारत न हट जावे। इस सहजगम्य उपाय से बिना किसी औषधि सेवन के हम इच्छानुसार स्वास्थ्य प्राप्त कर सकते हैं।

यदि किसी दिन सुबह ही स्वर उल्टा चले और तत्काल ही प्रियजन की बीमारी की खबर मिले तो उसके जीवन को खतरा समझना चाहिये। शीघ्र बीमार के पास पहुँच कर स्वर योगानुसार औषधि से बीमारी को दूर करना चाहिए। इस सम्बन्ध में मैं अपना अनुभव नीचे लिखता हूँ:—एक बार डूंगरगढ़ में रहते समय विपरीत स्वर चलने पर मेरे कनिष्ठ भ्राता सूरजमल की बीमारी का समाचार मिला। मैंने तत्काल उसके पास सरदार शहर पहुँच कर दाहिने स्वर में औषधि सेवन कराई और मंत्र चिकित्सा का उपचार किया, जिससे उसको तत्काल लाभ हुआ। इस सिद्धान्त के विपरीत चलने पर मुझे जीवन में एक महान् धोखा हुआ। एक दिन अचानक ही प्रातःकाल मेरे लघुभ्राता के पुत्र कीर्ति की बिमारी का समाचार मिला। मैं राज्य-कार्यों में व्यस्त और बच्चा समझकर लापरवाही से न जा सका। परन्तु सखेद यह लिखना पड़ता है कि मेरे वहां न पहुँचने के कारण उसकी मृत्यु हो गई। तब से मेरे में यह विश्वास घर सा कर गया है कि प्रातःकाल विरुद्धस्वर चलने पर और प्रियजन की बीमारी का समाचार मिलते ही जाकर उपाय करना चाहिए। मुझे पूर्ण आत्म-विश्वास है कि मैं यदि बीमार के पास उसकी चिकित्सा करता तो वह कभी अकालमृत्यु का ग्रास न बनता।

आत्मशक्ति भी एक महत्त्व की वस्तु है, किसी में यह ईश्वर प्रदत्त और किसी मे स्वय निर्मित हुआ करती है। आत्म-शक्ति या दृढ आत्मा ईश्वर का एक अभिन्न अंश है संसार की सारी वस्तुएँ इससे प्राप्त या अनुभूत की जा सकती हैं । इसके वास्तवि सामर्थ्य को जगाकर अनेक प्रकार की बीमारियां और मृत्यु टाली जा सकती हैं। इस शक्ति के बहुत कम ज्ञाता होने और जनता में इसके प्रति अधिक जिज्ञासा न होने के कारण लोग बहुत समय से अनेक बीमारियों से आक्रान्त हो रहे हैं। क्या ही अच्छा होता यदि प्रत्येक भारतवासी अपनी इस गुप्तशक्ति को पहिचान कर नीरोग रहता।

———

त्रयोदश प्रकाश

स्वर सहायता से प्रश्नों का उत्तर

प्रश्नोत्तरी

(१)–इस विश्व में कोई भी ऐसा प्रश्न नहीं है जिसका उत्तर स्वर योगी न दे सके। अत स्वर योगी नीचे लिखी बातों को ध्यान में रखकर उत्तर दे:–

वातावरण, समय, उम्र, तिथि, वार, रात्रि, दिन, तत्त्व, अन्तरतत्त्व, प्रकृति, विज्ञान, मनोविज्ञान आदि। उत्तर देने के दिन सूर्योदय के समय योगी का शुद्ध स्वर होना चाहिए। योगी को प्रश्नकर्ता का भी सूर्योदय के समय का स्वर तथा प्रश्न करते समय का स्वर पूछ कर उत्तर देना चाहिए। अन्यथा पूर्ण सफलता प्राप्त न होगी। यदि प्रश्नकर्त्ता अपना स्वर न बता सके तो योगी को अपने स्वर पर ही उत्तर का निश्चय करना चाहिये। उपर्युक्त विधि से प्रश्नोत्तर दिया जावेगा तो दोनों को सिद्धि होगी। प्रश्नकर्ता इसी हेतु आवे और उत्तरदाता इसी हेतु बैठकर उत्तर दे। दोनों का मन एक हो और किसी प्रकार का दूसरा भाव दोनों के मन में न हो तो तत्काल पूर्ण सफलता होगी।

१. जब उत्तरदाता का सूर्य स्वर चल रहा हो और—

(क) प्रश्नकर्त्ता नीचे से, पीछे से या दाहिनी ओर से प्रश्न करे;

(ख) प्रश्नकर्त्ता बाईं ओर से आकर दाहिनी तरफ बैठ जावे;

(ग) प्रश्नकर्त्ता दाहिनी ओर बैठ कर प्रश्न करे;

इन तीनों सूरतों में प्रश्नकर्ता अपने कार्य में फलीभूत होगा।

(घ) प्रश्नकर्ता दाहिनी ओर से बाईं ओर आकर बैठ जावे—

तो प्रश्नकर्ता का कार्य नाश होगा।

२—जब उत्तर दाता का चन्द्र स्वर चल रहा हो और—

(क) प्रश्नकर्ता आकर दाहिनी तरफ बैठ जावे,

(ख) प्रश्नकर्ता बाईं तरफ से आकर दाहिनी तरफ बैठ जावे;

इन दोनों दशाओं में प्रश्नकर्ता का कार्य निष्फल होगा।

(ग) प्रश्नकर्ता नीचे से आकर ऊपर, पीछे से आकर सामने और दाहिनी ओर से आकर बाईं ओर बैठ जावे—

तो उसका मनोवाञ्छित कार्य सिद्ध होगा। ऊपर के नियम साधारण हैं, परन्तु दाहिने स्वर में सामने से प्रश्न करने वाले को भी प्रायः सिद्धि मिलती है, ऐसा मेरा अनुभव है।

इसी तरह से मूक प्रश्नों का उत्तर देना चाहिये। यह आवश्यक नहीं कि प्रश्नकर्ता अपनी बात बतावे। उत्तरदाता को तो केवल अपना स्वर देखकर ही उत्तर देना चाहिए। एक बात और है, कि प्रश्नकर्ता का स्वर उत्तरदाता की ओर का चलना चाहिए अन्यथा मनोवाञ्छित सिद्धि न होगी।

स्वर के भीतर जाते समय यदि कोई दूसरा मनुष्य आकर अपनी मनोवाञ्छित बात पूछे तो उसको सिद्धि मिलती है यदि स्वर निकलते समय पूछे तो उस पुरुष को सिद्धि नहीं मिलती, यथा.—

"जब स्वर बाहिर को चले, तब कोइ पूछे तोर ।
वाको ऐसे भाषिये, नहीं कारज विधि कोर ॥"

चरणदास

तत्त्वों में विशेष बातें

प्रश्न पूछने के समय यदि योगी का पृथ्वी तत्त्व चल रहा हो तो यह समझना चाहिए कि मूल (पेड़, पौधा और धन) व बहु पादवालों के सम्बन्ध का प्रश्न होगा; जल व वायु में जीव तथा दो पैर वालों सम्बन्धी, अग्नि तत्त्व में धातु तथा चार पादवालों सम्बन्धी; आकाश तत्त्व में शुभ काम के नष्ट होने व पाद हीन वालों के सम्बन्ध का । इस मत का 'समर्थन सद्-ज्ञान-चिन्तामणि' और 'शिवस्वरोदय' ने भी किया है ।

चतुर्दश प्रकाश

स्त्री व स्वरशास्त्र

जिस तरह से हर बात में स्त्री का बायां तथा पुरुष का दाहिना अङ्ग शुभ कहा गया है, उसी तरह स्वर शास्त्र में भी स्त्री का बायां और पुरुष का दाहिना स्वर प्रधान माना गया है। हमारे हिन्दु धर्म शास्त्र में स्त्री को पुरुष का वामांग समझा गया है प्रकृति भी स्त्री के वामांग को प्रधानता देती है और उसका वामांग ही वास्तविक स्त्रीत्व प्रकट करता है। इस कारण जब स्त्री का वाम स्वर चल रहा हो तभी वह अपने असली रूप में होती है और अपने गुणों को भी प्रकृति के अनुसार अच्छी तरह प्रकट कर सकती है, अर्थात् वास्तविक प्रकृति व स्थिति का आनन्द प्राप्त कर सकती है। साधारण रूप से तो स्त्री और पुरुष दोनों पर स्वर शास्त्र एकसा ही लागू होता है; परन्तु जहां पर स्त्री पुरुष में भिन्नता या समानता का प्रश्न उपस्थित होता है, उस समय स्वर शास्त्र निम्नलिखित प्रकार से इन प्रश्न का समुचित रूप से उत्तर देता है। जब पुरुष की चन्द्र नाडी और स्त्री की सूर्य नाडी चलती हो उस समय पुरुष स्त्री गुण विशेष का परिचायक होता है, और स्त्री पुरुष गुण विशेष की परिचायिका होती है। अर्थात् स्त्री और पुरुष के गुणों में स्वभाव में विपरीतता सी मालूम होती है अतः जब स्त्री को पुरुष प्रधान गुणों का कार्य करना पड़े, तो उसको दाहिने स्वर में करना चाहिए और पुरुष को स्त्री प्रधान गुणों का कार्य करना पड़े तो वाम स्वर में करना चाहिए।

यदि लड़का उत्पन्न करना हो तो पुरुष का दाहिना और स्त्री का बायां स्वर होना चाहिए। कन्या उत्पन्न करनी हो तो इसके विपरीत नाड़ियां होनी चाहिए।

प्राचीन काल में स्त्रियां स्वर का महत्त्व जानती व समझती थीं। आज अशिक्षा के कारण और समझदार स्त्रियों की परम्परा टूट जाने से स्त्री जाति में स्वर ज्ञान नहीं रहा। किन्तु प्राचीन काल में स्त्रियां स्वयं स्वर का ज्ञान रखने के साथ साथ अपने पतियों के स्वर ज्ञानी होने में भी अपना गौरव मानती थीं और उनको इस बात में प्रोत्साहन देतीं थीं, जैसा कि नीचे लिखे राजस्थानी गीत के अंश से साफ प्रकट है —

गीत

कालैं से करवै, भँवरजी ! जीण करो,

काला थारी मिरगा–नैणी रा केस,

सुरज्ञानी ओ ढोला।

अर्थः—एक पुराने जमाने की स्वर योगिनी अपने पति को सम्बोधित करके कहती है कि हे स्वरज्ञानी पति देव। काले से ऊँट पर काठी सजाइये, क्योंकि आपकी मृगनयनी धर्मपत्नी के भी काले बाल हैं।

पंचदश प्रकाश

स्वर से शुभ मुहूर्त्त एवं छायापुरुष ज्ञान

स्वर का प्रभाव

पिछले ७-८ वर्षों से मैं रात को तिथि अनुसार स्वर में सोता हूँ तथा सोने के समय से सूर्योदय तक केवल एक बार ही वाम व दक्षिण स्वर बदला करता हूँ, अर्थात् केवल एक बार ही करवट लेता हूँ। इससे मुझे बड़ा ही सुन्दर फल मिला है, यानि मुझे ईश्वर में दृढ़ विश्वास हुआ है और आत्मविश्वास भी बहुत अधिक मात्रा में हो गया है। ज्ञान की वृद्धि हुई है। नई नई कई बातें मुझे मस्तिष्क में आई हैं, जिनसे मुझे प्रत्यक्ष लाभ दृष्टिगोचर हो रहा है और पर्याप्त अंशों में मुझे सिद्धि भी मिल रही है। भविष्य में सफलता की पूर्ण आशा बन्ध गई है। मन निष्काम कर्म की तरफ खिंचकर प्रयत्नशील हो रहा है। मेरी ईश्वर से यही प्रार्थना है कि मुझे पूर्ण रूपेण निष्काम कर्म में लगावे, क्योंकि ऐसा करने से मुझे बहुत ही ज्यादा आनन्द आ रहा है, और चित्त भी रात दिन पहले से अधिक प्रफुल्लित रहता है। पहले से भय की कमी, मन में शान्ति व सन्तोष, अधिक बल प्राप्ति, बहुत सी बीमारियों से छुटकारा और आत्मा में नवीन ज्योति का आविर्भाव हो रहा है। मुझे पूर्ण आत्मविश्वास है कि यदि मैंने भविष्य में कोई कुपथ्य नहीं किया तो कभी भी बीमारी से ग्रस्त न होऊँगा। मनुष्य अज्ञानवश ही बीमारियों से नाता जोड़ लेता है। मैं इहलौकिक और पारलौकिक कई सुखों का अनुभव कर रहा हूँ। उदाहरणार्थ—मेरी यह दृढ़ धारणा है कि मेरी दीर्घ आयु होगी और मैं अपनी इस स्वर शक्ति के द्वारा

बुढापा पास न आने दूंगा। अब भविष्य में मेरा विचार है कि रात में केवल दाहिना और दिन में बायां स्वर चलाऊं ताकि दीर्घ आयु प्राप्त कर सकूं।

मैंने ऊपर लिखा है कि मैं रात में केवल एक बार स्वर बदलता हूँ उस समय मेरा शत्रुपक्ष प्रबल हो गया। विचार ने से ज्ञात हुआ कि १२ घड़ी चन्द्रस्वर चलना इसका कारण था। इसका वर्णन द्वादश प्रकाश में हो चुका है। अब मैंने रात्रि को ४, ८, १४ घड़ी चन्द्रस्वर चलाना शुरू कर दिया। इससे मेरे शत्रु पक्ष का नाश हो रहा है और प्रतिदिन सब प्रकार से मेरा अभ्युदय हो रहा है।

साधारणतया प्रत्येक मनुष्य का एकसा स्वर होना एक ही देशकाल पर निर्भर है क्योंकि स्वर का बायां दायां होना सूर्योदय पर निर्भर है और सूर्योदय सब जगह एक समय नहीं होता।

किसी आचार्य का मत है कि चन्द्रस्वर शीतल होने से ज्यादा चलना अच्छा है और सूर्यस्वर गर्म होने से कम। मेरी समझ में यह मत ठीक नहीं, क्योंकि

कौनसा स्वर अधिक लाभदायक

शरीर में सर्दी और गर्मी समभाव से रहनी चाहिए अन्यथा कष्ट भोगना पड़ेगा। प्रकृति भी सर्दी और गर्मी के समभाव से अपनी उपादेयता सिद्ध कर रही है। अतः ये दोनों बराबर चलने ठीक हैं।

इडा नाडी (दिन) तथा उत्तरायण और पिंगला (रात्रि) तथा दक्षिणायन

स्वरमें उत्तरायण दक्षिणायन

कही जाती है। दिन रात में भी छओं ऋतुएँ वर्तती मानी जाती हैं, जैसे.—

ऋतु	समय
१ वसन्त	प्रात काल में

२ ग्रीष्म	दोपहर में
३ वर्षा	शाम को
४ शरद्	रात्रि के प्रथम हिस्से में
५ शिशिर	मध्य रात्रि में
६ हेमन्त	रात्रि के अन्तिम हिस्से में

पं० नारायणप्रसाद तिवारी की यह नई सूझ है कि यदि किसी क्रोधी, दुष्ट, शत्रु के पास जाना हो तो प्रस्थान के समय जिधर का स्वर न चल रहा हो उधर का पैर आगे बढ़ा कर प्रस्थान करना चाहिए और शत्रु को अचलित स्वर की ओर रख कर बातचीत करनी चाहिए। अचलित स्वर के पैर को आगे बढ़ा कर प्रस्थान करना तिवारीजी के सिवाय किसी ने नहीं लिखा है। अत विज्ञ पाठकों को इसका परीक्षण करना चाहिए।

सबसे सरल मुहूर्त

स्वर के अनुसार कार्य करने से ज्योतिषियों के बताये हुए पेचीदे मुहूर्तों से छुटकारा मिल जाता है क्योंकि इसमें तिथि, वार, दिशाशूल, योग आदि का कोई झंझट नहीं रहता। अत स्वर मुहूर्त देखने का सबसे सरल साधन है।

यदि पृथ्वी व जलतत्त्व अधिक चले तो धन मिलता है व स्वास्थ्य ठीक रहता है। यदि वायुतत्त्व ज्यादा चले तो विपत्ति और झंझट होते हैं। अग्नि से रोग और आकाश से हानि होती है। बहुत से व्यक्ति बैठे हों और अचानक वायुतत्त्व चले तो समझलो कि कोई आदमी जाना चाहता है, तो कह देना चाहिए कि जो जाना चाहता है वह चला जावे।

'हंस' व 'सोऽहं' शब्द में 'हकार' शिव-स्वरूप और 'सकार' शक्ति स्वरूप है। बाईं नाड़ी को चलाने वाला चन्द्र शक्ति स्वरूप व दाहिनी नाड़ी को चलाने वाला सूर्य शंकर स्वरूप है। 'हकार' श्वास के निकलने में, और 'सकार' अन्दर जाने में काम आता है; अर्थात् 'हकार' नाश स्वरूप है क्योंकि प्रथम तो बाहर निकली हुई वायु निष्फलता देती है और दूसरे आयुर्वेदिक सिद्धान्त से भी वह हवा अशुद्ध होती है जबकि इसके विपरीत अन्दर जाने वाली हवा पुष्टिदात्री और शरीर में आकर हर बीमारी को नष्ट करने वाली व डूबते हुए को पानी के ऊपर लाने वाली होती है। देखने में आया है कि डूबता हुआ मनुष्य यदि 'सकार' शक्ति रूप वायु को अन्दर लेजाकर कुछ ही क्षण रोकले तो डूबने से रुक सकता है। इसी तरह से यदि 'सकार' के यानि हवा के प्रवेश करते समय दान किया जावे तो उसका फल कोटि गुना होकर इसी जीवन में मिलता है।

'हंस' व 'सोऽहं' शब्द

छाया पुरुष के परिज्ञान से साधारण मनुष्य भी त्रिकालज्ञ होकर देवों की समता प्राप्त कर सकता है। इसका लक्षण नीचे लिखा जाता है।

छाया पुरुष

* एकान्त वन में जाकर सूर्य को अपनी पीठ पीछेकर सावधानी के साथ अपनी छाया का कण्ठदेश देखे। फिर आकाश की ओर देख 'ॐ ह्रीं परब्रह्मणे नमः'

---

* एकान्तं विजनं गत्वा कृत्वाऽऽदित्यं च पृष्ठतः
निरीक्षयेन्निजच्छायां कण्ठदेशे समाहितः।
ततश्चाकाशमीक्षेत ॐ ह्रीं परब्रह्मणेनमः
अष्टोत्तरशतं जप्त्वा ततः पश्यति शंकरम्॥

इस मंत्र का १०८ बार जप करे तो वह शिवजी के दर्शन कर सकता है। इनका स्वरूप शुद्ध स्फटिक तुल्य है। मनुष्य अनेक रूपधारी इस महादेव को ६ मास के निरन्तर अभ्यास से देखने के बाद भूचरों (प्राणियों) का स्वामी हो जाता है और दो वर्ष तक अभ्यास करने से स्वयं कर्त्ता, हर्ता, और प्रभु हो जाता है।

निरन्तर अभ्यास करे तो त्रिकालज्ञ होकर परमानन्द को प्राप्त करता है। उसके लिए कुछ भी दुष्प्राप्य नहीं रहता। जो योगी उस महादेव के रूप को निर्मल आकाश में कृष्णवर्ण का देखे तो ६ महीने के भीतर उसकी मृत्यु होती है। पीत वर्ण देखे तो व्याधि, लाल से भय, नील से हानि होती है और अनेक वर्ण का देखे, तो वह योगी अनेक सिद्धियों को प्राप्त होता है।

यदि उसको अपनी छाया में पैर और पेट न दिखाई दें, तो निश्चय ही वह योगी मर जायगा। बाम भुजा कटी हुई दीखे तो स्त्री-मृत्यु, दाहिनी भुजा न दीखे तो एक महिने के भीतर निकटतम-बन्धु की मृत्यु और सिर न दीखे तो एक मास में, कन्धे व जंघा न दीखे तो आठ ही दिन में और सम्पूर्ण छाया का लोप हो जावे तो उसी दिन स्वयं मृत्यु को प्राप्त होता है।

प्रातःकाल इसी तरह अंगुलियों को देखे। सारी न दीखें तो १ दिन में मृत्यु, और छाया तथा अपने को न देखे तथा छाया पुरुष के कान, कन्धे, हाथ मुख, पार्श्व और हृदय को न देखे, तो तत्काल मृत्यु हो जाती है, और यदि सिर न दीखे तथा दिशाओं का ज्ञान भी न रहे तो वह मनुष्य ६ महीने तक ही जीता है।

—:—:—

षोडश प्रकाश

स्वर का योग से सम्बन्ध

कल्याण के योगांक में योग शब्द की व्युत्पत्ति इस तरह की है कि योग शब्द 'युज् समाधौ' धातु से घञ् प्रत्यय होकर बना है। अतएव इसका अर्थ संयोग न होकर समाधि ही हुआ है। समाधि चित्तवृत्तिनिरोध की क्रियाशैली का नाम है। उस क्रियाशैली को महर्षियों ने चार भागों में विभक्त किया है— मन्त्र योग, हठ योग, लय योग और राज योग।

योग भारतवर्ष की अमूल्य सम्पत्ति है।

दर्शन शास्त्र महर्षियों की योग विद्या का ही चमत्कार है। स्मृति, पुराण, अन्यान्य शास्त्र, चिकित्सा—ज्योतिषादि अधिक क्या, समस्त विद्याएं योगाभ्यास —जन्य ऋतम्भरा प्रज्ञा के ही मधुर एवं मनोहर फल हैं। अतएव आर्य जाति के समस्त साहित्य में ही योग का मुक्त कण्ठ से गुणगान हुआ है। एकाग्रता, समाधि तथा योग ये तीनों शब्द एक ही अर्थ के प्रतिपादक हैं। विचार करने से सिद्ध होगा कि संसार का कोई भी ऐसा कार्य व्यवहारिक या पारमार्थिक नहीं है, जो बिना चित्त की एकाग्रता के निष्पन्न हो सकता है।

आजकल नये नये वैज्ञानिक आविष्कार भी अमरकीर्ति न्यूटन प्रभृति विज्ञान-शास्त्री महानुभावों की एकाग्रता के ही दिव्य चमत्कार हैं। अतः प्रत्येक प्राणी को

एकाग्रता या योग की शरण में अवश्य ही आना होगा। अन्यथा वह अपने लौकिक और पारलौकिक किसी भी अभीष्ट को सिद्ध न कर सकेगा।

समष्टि–व्यष्टि के सिद्धान्तानुसार समष्टि यानि सृष्टिरूपी ब्रह्माण्ड तथा व्यष्टि यानि जीव शरीर रूपी पिण्ड, दोनों एक हैं। अतः ब्रह्माण्ड की समस्त वस्तुओं का अस्तित्व उसी के समान पिण्ड में अवश्य है। पिण्ड में ब्रह्माण्ड व्यापिनी प्रकृति शक्ति का केन्द्र मूलाधार पद्म में स्थित सार्धत्रिवलयाकार (साढ़े तीन चक्र लगाये हुए) सर्पवत् कुण्डलाकृति कुण्डलिनी है। ब्रह्माण्ड व्यापी पुरुष का केन्द्र सहस्रदल कमल है। निद्रित कुल-कुण्डलिनी को गुरूपदिष्ट योग क्रियाओं से प्रबुद्ध करते हुए कुल कुण्डलिनीरूप प्रकृति शक्ति को सुषुम्णा नाड़ी गुम्फित षट्चक्रों के भेदन द्वारा लेजाकर सहस्रदल कमल विहारी परमात्मा में लय करने की जो क्रिया-शैली है और तदनुयायी जितने साधन हैं, उनको लययोग कहते हैं।

लय योग के अंग

यम, नियम, स्थूलक्रिया, सूक्ष्मक्रिया, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, लयक्रिया और समाधि लय योग के अंग हैं।

सूक्ष्मक्रिया के साथ स्वरोदय साधन का, प्रत्याहार के साथ नादानुसन्धान क्रिया का और धारणा के साथ षट्चक्र भेदन क्रिया का सम्बन्ध है।

पायु से दो अंगुल ऊपर और उपस्थ से दो अंगुल नीचे चतुरंगुल विस्तृत समस्त नाड़ियों का मूल स्वरूप पक्षी के अण्ड की तरह एक कन्द विद्यमान है, जिसमें से बहत्तर हजार नाड़ियाँ निकल कर सारे शरीर में व्याप्त हुई हैं। उनमें से योग शास्त्र की तीन नाड़ियाँ मुख्य कही गयी हैं– इडा, पिंगला और सुषुम्णा। इन तीनों नाड़ियों का स्वर में वर्णन है। इसलिए स्वर का योग से सम्बन्ध है।

सहस्रदलकमल स्थित परमशिव में लय कर देना ही लययोग का उद्देश्य है।

प्रथम चक्र का नाम मूलाधार पद्म है। गुदा के ऊपर और लिङ्गमूल के नीचे सुषुम्णा के सन्धि स्थल में इसकी स्थिति है। इसके व, श, ष, स ये वर्ण चार दल हैं, इसका रक्तवर्ण है, इस चक्र की अधिष्ठात्री देवी डाकिनी है; इसका बीज ल है। यन्त्र का रंग पीला और बीज का वाहन ऐरावत हस्ती है। देव ब्रह्म है। आधार पद्म की कर्णिकाओं के गह्वर में वज्रा नाडी के मुख में त्रिपुर-सुन्दरी का निवासस्थान एक त्रिकोण शक्तिपीठ है। वह कामरूप कोमल और विद्युत् के समान तेज पुञ्ज है। उसमें कन्दर्प नामक वायु का निवास है। वह वायु जीवधारक बन्धु-जीव पुष्प के समान विशेष रक्तवर्ण तथा कोटि सूर्य समान प्रकाशशाली है। उक्त त्रिकोण शक्ति पीठ में स्वयम्भूलिंग विराजमान है, जो पश्चिम मुख, तप्त-काञ्चन-तुल्य कोमल, ज्ञान और ध्यान का प्रकाशक है। इस स्वयम्भू लिंग के ऊपर मृणाल अर्थात् कमल की डण्डी के तन्तु के सदृश सूक्ष्म तथा शंख की भांति साढ़े तीन वलयों के आकार की सर्प-तुल्य कुण्डलाकृति नवीन विद्युन्माला के समान प्रकाश-शालिनी कुल-कुण्डलिनी निजमुख से उस स्वयम्भूलिंग के मुख को आवृत करके सोई रहती है। उसके प्रबोध की क्रियाएं अतिकठिन, गोप्य तथा गुरुप्रसाद से ही ज्ञातव्य हैं।

द्वितीय चक्र का नाम स्वाधिष्ठान पद्म है, इसकी स्थिति लिंगमूल में है। ब, भ, म, य, र, ल ये छै वर्ण उसके दल हैं। इसका रक्तवर्ण है। उसमें श्रावाद्य सिद्ध की स्थिति है और अधिष्ठात्री देवी राकिणी है।

तृतीय मणिपुर नामक चक्र है, जो नाभि मूल में है और जिसके दशदल रूप ड, ढ, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ ये दश मेघवर्णमय वर्ण शोभायमान हैं, जहां

रुद्राख्य सिद्ध लिंग सब प्रकार के मंगलों को दान कर रहे हैं, और जहां परम धार्मिका लाकिनी देवी विराजमान हैं।

चतुर्थ हृदयस्थित चक्र का नाम अनाहत चक्र है। इसमें क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ट, ठ इन द्वादश वर्णयुक्त अति रक्तवर्ण द्वादश दल हैं। हृदय अति प्रसन्न स्थान है। इस अनाहत पद्म में परम तेजस्वी रक्तवर्ण बाण-लिंग का अधिष्ठान है, जिसका ध्यान करने से इहलोक और परलोक में शुभफल की प्राप्ति हुआ करती है। दूसरे पिनाकी नामक सिद्धलिंग और काकिनी नामक अधि-ष्ठात्री देवी वहा स्थित है।

पञ्चम पद्म का स्थान कण्ठ है और नाम विशुद्ध चक्र है। उसका रंग सुन्दर स्वर्ण की तरह है, (मतान्तर में धूम्रवर्ण है)। अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, ऌ, ॡ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः ये षोडशवर्ण सुशोभित उसके षोडश दल हैं। इस पद्म में छगलाण्ड नामक सिद्धलिंग और शाकिनी नामक देवी की स्थिति है।

भ्रूद्वय के मध्य में आज्ञापद्म छठा चक्र है। यह शुभ्र वर्ण है और ह, क्ष युक्त इसके दो दल हैं। शुक्ल नाम के महाकाल इस पद्म के सिद्धलिंग और हाकिनी नाम्नी महाशक्ति अधिष्ठात्री देवी है।

द्विदल पद्म के ऊपर ब्रह्मरन्ध्र में ही इडा, पिंगला और सुषुम्णा का संगम स्थान तीर्थराज प्रयाग है। इसमें स्नान करने से तत्क्षण साधक मुक्तिपद को प्राप्त होता है। ब्रह्मरन्ध्र के ऊपर सहस्र दल कमल स्थित है। उस स्थान का नाम कैलाश है, और वहां देवादिदेव महादेव सदा विराजमान हैं और वहीं महेश्वर नामक परम शिव हैं। उनको नकुल भी कहते हैं। वह नित्यविलासी हैं, उनको क्षय

भाग कन्द कहलाता है और इसी कन्द में जगाधार महाशक्ति की प्रतिमूर्ति कुण्ड-लिनी का निवास माना गया है।

सुषुम्णा मेरुदण्ड के भीतर कन्दभाग से प्रारम्भ होकर कपाल में स्थित सहस्रदल कमल तक जाती है। जिस प्रकार कदली स्तम्भ में एक के बाद दूसरा परत होता है उसी प्रकार इस सुषुम्णा नाडी के भीतर क्रमशः वज्रा, चित्रिणी तथा ब्रह्म नाडी हैं। योग क्रियाओं द्वारा जाग्रत कुण्डलिनी शक्ति इसी ब्रह्म नाडी द्वारा पिंगला नाडी में स्थित ब्रह्मरन्ध्र तक (जिस स्थान पर खोपड़ी की विभिन्न हड्डियां एक स्थान पर मिलती हैं और जिसके ऊपर शिखा रक्खी जाती है) जाकर पुनः लौट आती है।

छः चक्र शरीर के जिन अवयवों के सामने मेरुदण्ड के भीतर स्थित हैं उन्हीं अवयवों के नाम से पुकारे जाते हैं। इनके अन्य नाम भी हैं। मेरुदण्ड के भीतर ब्रह्मनाडी में पिरोये हुए छः कमलों की कल्पना की जाती है। इसलिए ये ही कमल षट्चक्र हैं। इनका वर्णन ऊपर कर दिया गया है और विस्तृत विवरण देखना हो तो 'कल्याण शक्ति अंक' के ४५२ पृष्ठ पर देखा जा सकता है।

प्राणायाम से जाग्रत होकर कुण्डलिनी शक्ति विद्युल्लतता रूप में मेरुदण्ड के भीतर ब्रह्मनाडी में प्रविष्ट होकर ऊपर को चलती है। इसी तरह से सभी चक्रों का वर्णन यहाँ कुछ ज्यादा दिया गया है। सहस्रार चक्र के हजार दलों पर बीस बीस वार प्रत्येक स्वर तथा व्यन्जन स्थित माने गये हैं। परमशिव से कुण्डलिनी शक्ति का संयोग लय योग का ध्येय है। विषय अत्यन्त गहन है पर सारांश यह है कि नश्वर पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश तत्त्वों को क्रमशः एक दूसरे में लीन करके अन्त में अमर अद्वैतरूप का अनुभव करना मनुष्य मात्र का लक्ष्य होना चाहिए। यही उद्देश्य पञ्चोपचार पूजा का है। ये पाञ्चो उपचार पाञ्चों तत्त्वों के स्थानापन्न हैं।

यथा-गन्ध (पृथ्वी), नैवेद्य (जल), दीप (अग्नि), धूप (वायु), और पुष्प (आकाश) इनका समर्पण पाँचों तत्त्वों के लयके तुल्य है। इसके अतिरिक्त पृथ्वी से लेकर आकाश तक क्रमशः एक दूसरे से सूक्ष्मतर तत्त्व हैं।

प्रत्येक चक्र के सम्बन्ध में दल, तत्त्व, यन्त्र, बीज, वाहन, इत्यादि के विषय में जो बातें कही गई हैं वे साधारण पाठकों को असम्भव सी मालूम होती होंगी। अतः इस विषय में कुछ विचार अप्रासंगिक न होंगे।

चक्रों के दल—अंग्रेजी में चक्रों को PLEXUS अथवा नाडीमण्डल कहते हैं। यह वर्णन कुछ कुछ कठिन भी है क्योंकि ये छः चक्र मेरुदण्ड के उन भागों में स्थित हैं, जहां से विशेष संख्या के गुच्छों में नाडियाँ निकलती हैं। यही नाडियों के गुच्छे समता के लिए कमलदल कहे गये हैं। चक्रों के चित्रों में दलों के अग्रभाग से निकली हुई नाडियाँ दिखलाई गई हैं।

दलों के वर्ण—उपर्युक्त नाडीपुञ्ज किसी रंग से रंगे नहीं हैं। अभिप्राय यह है कि रुधिर के लाल रंग पर भिन्न भिन्न तत्त्वों के प्रतिबिम्ब पड़ने से रुधिर के रंग में जिन जिन स्थानों में जो विकृतियाँ प्रतीत होती हैं, वही उस नाडीपुञ्ज का रंग कहा गया है। यथा रुधिर में मिट्टी मिला दीजिये तो हल्का या मटियाला पीला रंग हो जायगा, जल मिला दीजिये तो गुलाबी रंग हो जायेगा। रुधिर को आग पर गर्म कीजिये, नीले रंग का हो जायेगा। शुद्ध वायु में रुधिर गहरा लाल प्रतीत होगा। रुधिर को घने आकाश में देखिये, धुएं के रंग का सा दीख पड़ेगा।

दलों के अक्षर—नाडीपुञ्जों पर कोई भी अक्षर लिखे नहीं हैं। तात्पर्य यह कि बोली के समय वायु का धक्का जिस दल से जो अक्षर उत्पन्न करता है वही उस दल का अक्षर माना गया है। यह नादमन्त्र का विषय अत्यन्त गहन है। इसके विषय में

कुछ बातें श्री 'ज्वालामुखी यात्रा' शीर्षक लेख की भूमिका में लिखी गई हैं, जो 'कल्याण के' ८ वें वर्ष की चौथी संख्या में मिलेंगी।

चक्रों के यन्त्र—चक्रों के यन्त्र क्रमशः चतुष्कोण, अर्द्धचन्द्राकार, त्रिकोण, षट्कोण, लिङ्गाकार तथा पूर्णचन्द्राकार हैं। इसका अर्थ यह है कि इस शरीर की भिन्न भिन्न नाड़ियाँ वायु के धक्कों के कारण भिन्न भिन्न तत्त्वों के स्थान में एक विशेष रूप की आकृति ग्रहण करती हैं। उदाहरणार्थ, जलती हुई अग्नि को देखिये, ठीक त्रिकोणाकृति दीख पड़ेगी। त्रिकोण का मुख ऊपर को उठती हुई लपटों में दीख पड़ेगा। इस विषय में जिज्ञासु पाठकों को श्री रामप्रसाद कृत '*Nature's Finer Forces*' नामक ग्रन्थ देखना चाहिए।

यन्त्रों के तत्त्व—इन तत्त्वों का तात्पर्य यह है कि भोजन के उपरान्त शरीर के इन इन स्थानों में ये ये तत्त्व तैयार होते हैं और इनसे पुष्ट होकर शरीर अपने कार्यों में प्रवृत्त होता है।

तत्त्वों के बीज—जिस प्रकार किसी यन्त्र में (यथा इञ्जिन में) स्थान स्थान पर विशेष प्रकार के शब्द होते हैं, उसी प्रकार वायु के सञ्चार से शरीरस्थ तत्त्व विशेषों के स्थान में विशेष विशेष शब्द होते हैं। यथा पृथ्वी-तत्त्व के स्थान पर जहां मल निकलता है वहां वायु ल लं लं ल करता हुआ प्रतीत होता है। मूत्राशय के स्थान पर जल तत्त्व के बहने के कारण वायु व, व, व, वं शब्द करता है। अन्नादि पचने के समय नाभि के अग्नितत्त्व से वायु रं, रं, रं, रं करता हुआ चलता है, इत्यादि।

बीजों के वाहन—इनसे यह अभिप्राय है कि इन इन स्थानों पर वायु की गति इन इन पशुओं की गति की तरह होती है। यथा पृथ्वीतत्त्व के बोझ के कारण वायु की गति हाथी की तरह मन्द हो जाती है। जलतत्त्व के बहने वाला होने के कारण वायु

मकर की तरह डुबकना चलता है। जिस प्रकार बटलोही में भोजन पकते समय वायु वेग से चलता है, उसी प्रकार जठराग्नि के कारण वायु वेग से चलता है, वह मेढे की चाल की तरह है। हृदय के वायुतत्त्व में शरीरस्थ वायु हिरन की तरह छलाँग मारकर भागता है, इत्यादि।

चक्रों के देवी देव—यह विषय ध्यानयोग तथा उपासना भेद से सम्बन्धित है और अत्यन्त गहन है। इसके मर्म को केवल साधक ही जान सकता है। 'कालापद्धति,' 'षट्चक्रनिरूपण' आदि ग्रन्थों के अनुसार अलग अलग देवी देवता उपरोक्त चक्रों के हैं। इस कारण इस पर ध्यान देकर भिन्न भिन्न ग्रन्थों से निचोड़ लेकर नतीजा निकालना चाहिए।

कई बौद्ध बड़े योगी हुए हैं और अब भी तिब्बत में बड़े ही उग्र और शक्तिशाली योगी विद्यमान हैं। उनकी शक्तियों की कथायें लोगों को स्तब्ध कर देती हैं। पाठकों ने गौतमबुद्ध की अनेक मूर्तियों में सिर पर घुंघराले बाल से देखे होंगे। यथार्थ में ये केश नहीं हैं सहस्रारकमल के दल हैं। इन मूर्तियों में लम्बे फटे कान केवल उग्र योगाभ्यास के द्योतक हैं।

कन्द तथा कुण्डलिनी की स्थिति के विषय में कई मत हैं। एक तो उपरोक्त मत है जिसमें 'कन्द' मूलाधार चक्र के समीप स्थित है। दूसरे मत में कन्द की स्थिति नाभि के पास कही गई है। इसके अनुसार कुण्डलिनी भी नाभि प्रदेश के समीप में स्थित है। तीसरा मत एक पाश्चात्य अनुभवी का है। इसके अनुसार कुण्डलिनी का स्थान अनाहत (हृदय) चक्र के पास है। इसका एक चित्र पेरिस से प्रकाशित *Theosophica Practica* में लिखा है। जर्मनी में जिल्हेल्म नामक एक दार्शनिक ईसा की १७ वीं शताब्दी में हो गया है

जिसका सम्बन्ध सुविख्यात पाश्चात्य योगी मण्डल (*Rosicrucian Society*) से था। इस महात्मा को निज देह में इन चक्रों के दर्शन हुए थे। इस विद्वान् के अनुसार इन चक्रों का सम्बन्ध क्रमश मूलाधार से सहस्रार तक चन्द्र, बुद्ध, शुक्र, सूर्य, मंगल, बृहस्पति तथा शनि से है। यह एक नवीन विचार है और अनुसन्धान करने के योग्य है। कुण्डलिनी और चक्रों के विषय में अंग्रेजी में कलकत्ता हाईकोर्ट के भूतपूर्व जज सर जान वुडरफ द्वारा लिखित (*The Serpent Power*) बड़ा ही अपूर्व एव सुन्दर ग्रन्थ है।

कुण्डलिनी जागरण विधि 'कल्याण शक्ति अङ्क' में ४५५ पृष्ठ पर स्वामी ज्योतिर्मयानन्दजी ने दी है और ४७२ पृष्ठ पर प्रोफेसर श्री शकरराव वी. दाण्डेकर लिखते हैं कि कुण्डलिनी योग से आध्यात्मिक, आधिभौतिक दोनों लाभ हैं। शरीर स्वस्थ होता है। शरीर पर अपनी हुकूमत चलती है। सिद्धियां मिलती हैं और परमात्म-तत्त्व का भी परम लाभ होता है। इसलिये इसका वर्णन सुनने मात्र से इसका साधन करने की ओर अनेकों लोग खिंच जाते हैं।

उनका कहना है कि आधुनिक प्रयास बम्बई के डा० बसन्त रेले *F. C. P. S. L, M S.* का है। इन्होंने अपनी '*The Mysterious Kundlini*' नामक पुस्तक में (जो डी० बी० तारापोरेवाला सन्स एण्ड को० बॉम्बे से प्राप्त हो सकती है) शरीर शास्त्र और योगशास्त्र दोनों का विचार करके यह निश्चय किया है कि कुण्डलिनी दाहिनी वेगस नर्व (*Right Vagus Nerve*) है। इस पुस्तक में और भी कई विचित्र वर्णन हैं।

आर्थर अवेलन (उपनाम सर जान वुडरफ) ने अपनी नागिनी शक्ति (*The Serpent Power*) पुस्तक में लिखा है कि कुण्डलिनी गुप्त सगृहीत शक्ति है।

यह व्यष्टि शरीर में उस विश्व महाशक्ति की प्रतिनिधि है जो विश्व को उत्पन्न करती और धारण करती है।

सरजान वुडरफ ने डाक्टर रेले के ग्रन्थ की प्रस्तावना में कहा है कि रेलेजी का मत एक नवीन स्वतन्त्र आविष्कार है। मगर कुण्डलिनी वेगस नर्व है यह नहीं कहा जा सकता। वह एक बड़ी संगृहीत शक्ति है *(The grand potential)*। इन्होंने 'शक्ति और शाक्त' नामक अपने ग्रन्थ में कहा है कि शक्ति दो रूप धारण करती है, एक स्थिर या संगृहीत (कुण्डलिनी) और दूसरा स्पन्दनशील (जैसे प्राण)।

स्वामी विवेकानन्द इसके विषय में अपने 'राजयोग' में कहते हैं कि जिस केन्द्र में सब जीव-मनोभाव संगृहीत रहते हैं उसे मूलाधारचक्र कहते हैं, और कर्मों की जो शक्ति, कुण्डलित रहती है वह कुण्डलिनी (यानि गिंडुलि सी बनी) होने से कुण्डलिनी कहलाती है।

श्री ज्ञानेश्वर महाराज अपने 'गीताभाष्य' में अध्याय ६ श्लोक १४ का भाष्य करते हुए इसके सम्बन्ध में कहते हैं कि नागिन का बच्चा कुंकुम में नहाया हुआ जैसे अपनी देह को गिंडुली बनाये सोता है वैसे ही वह कुण्डलिनी अपनी देह को साढे तीन लपेटों में समेटकर नीचे की ओर मुँह किये हुए सोई रहती है। और वे यह भी लिखते हैं कि बाद में कुण्डलिनी का कुण्डलिनी नाम छूट जाता है और उसका मारुत नाम हो जाता है। पर इसका जो शक्तित्व है वह तब तक रहता ही है जब तक कि वह शिव में नहीं मिल जाती।

श्री ज्ञानेश्वर आदि योगियों के मत से कुण्डलिनी जगाने का उपाय वज्रासन पर खेचरी मुद्रा लगाकर बन्धत्रय साधकर बैठ जाना है। अर्थात् एकान्त

पवित्र देश में स्थिर मन होकर सद्गुरु स्मरणानुभाव करके आसन पर बैठे। आगे महाराज कहते हैं —

'मुद्रा की बड़ी महिमा है, वही अब सुनो। पिण्डलियों को जाँघों से सटाकर पालथी मारे। पैरों के दोनों तलवे टेढे करके उन्हे आधार चक्र के नीचे (गुदा, शिश्न के बीच की सीमन पर) ऐसे जमाकर रक्खे कि वह स्थिर रहे। यह ध्यान में रहे कि दाहिने पैर का तलवा नीचे रहे। उसीमे सीवन को दबावे इससे दाहिने पैर पर बाँया पैर आप ही ठीक बैठ जाता है। गुदा और शिश्न के बीच में जो चार अंगुल जगह है उसमें से डेढ अंगुल ऊपर और डेढ अगुल नीचे छोड़ कर बीचों-बीच जो एक अंगुल जगह बचती है वहाँ दाहिने पैर के तलवे के उत्तर भाग से अपना शरीर ऊपर तौलकर जोर से दबावे। पीठ के नीचे के हिस्से को ऐसा हल्के से ऊपर उठावे कि उसे ऊपर उठाया है या नहीं यह कुछ भी मालूम न हो। इसी प्रकार दोनों टखनों को भी ऊपर उठावे। यह मूलबन्ध का लक्षण है और इसीका गौण नाम वज्रासन है।······

'पश्चात् गला आकुञ्चित होता है और गले के नीचे के गड्ढे से स्थान में ठुड्डी अटकी रहती है। वहाँ वह मजबूती से बैठ जाती है और छाती को दबाये रहती है। हे अर्जुन! जिस बन्ध से कण्ठमणि अदृश्य होता है उसे "जालन्धर बन्ध" कहते हैं।···

'पेट पीठ से जा लगता है और हृदय–कमल अन्दर खिल उठता है।······ शिश्नस्थान के किनारे पर तथा नाभि स्थान के नीचे के हिस्से में जो बन्ध लगता है उसे 'ओड्डियान-बन्ध' कहते हैं।·········

'···· जो अपानवायु मूलबन्ध से रुद्ध होता है वह ऊर्ध्वगति से पीछे लौट-

कर ऊपर छटककर पुलाव पकड़ता है। .....रोगों को पकड़ पकड़कर दिखाता है और तत्क्षण उनका नाश करता है और शरीर में पृथ्वी और जल के जो अंश हैं उन्हें एक दूसरे में मिलाता है। अर्जुन ! अपानवायु एक तरफ से सब काम करता है और दूसरी तरफ वज्रासन की उष्णता कुण्डलिनी शक्ति को जगाती है।'

कुण्डलिनी जागती है तब बड़े वेग से झटका देकर ऊपर की ओर मुँह फैलाती है। ऐसा मालूम होता है जैसे कि वह बहुत दिनों की भूखी हो और शरीर में पृथ्वी और जल के जो भाग हैं उन सबको चट कर जाती है। हथेलियों और पाँवतलों को सोधकर उनका रक्तमांस आदि खाकर ऊपर के भागों को भेदती है; अंग-प्रत्यंग की सन्धियों को छान डालती है; नखों का सत्व भी निकाल देती है, त्वचा को अस्थि-पंजर से सटा देती है, पृथ्वी, जल इन दो भूतों को खा चुकने पर वह पूर्णतया तृप्त होती है और तब शान्त होकर सुषुम्णा के समीप रहती है। तब तृप्तिजन्य समाधान प्राप्त होने से उसके मुख से गरल निकलता है। उसी गरलरूप-अमृत को पाकर प्राणवायु जीता है और कुण्डलिनी के सुषुम्णा में प्रवेश करने पर ऊपर की ओर जो चन्द्रामृत का सरोवर है वह धीरे धीरे उलट जाता है और वह चन्द्रामृत कुण्डलिनी के मुख में गिरता है। इसके द्वारा वह रस सर्वांग में भर जाता है और प्राण वायु जहाँ का तहाँ ही स्थिर हो जाता है। उस समय शरीर की कान्ति का वर्णन ज्ञानेश्वरजी महाराज करते हैं कि शरीर पर त्वचा की जो भूसी पपड़ी सी रहती है, वह भूसी की तरह निकल जाती है। तब शरीर की कान्ति केसर के रंग की सी या रत्नरूप बीज के कोंपलों या सान्ध्याकाश के रंग की सी लाल दीखती है। इस तरह से कुण्डलिनी चन्द्रामृत पान करती हुई ऐसी देह बनाती है जिससे यमराज भी काँपते हैं। यहीं उसे अणिमादि सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। काया कंचन-कान्तिवाली और वायु जैसी हल्की हो जाती है; कारण कि उसमें पृथ्वी और

जल के अंश नहीं होते। सागर पार की वस्तु को देखना, स्वर्ग में होने वाले विचारों को सुनना, चींटी के मन की भी बात जान लेना, वायु रूपी घोड़े पर सवार होना, पैरों को बिना भिगोये जल पर चलना ऐसी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं।

दो भूतों को खाकर कुण्डलिनी जब हृदय में आती है अनाहत की भाषा में बोलती है और तीसरे तत्त्व तेज को चट कर जाती है। तब वह वायु की मूर्ति के समान हो जाती है। देह का कोई आकार नहीं रह जाता और आकाश की देह बनी हो ऐसी यह बन जाती है। तब उसे खेचर कहते हैं।

इस तरह भूतत्रय का लोप होने पर प्राण वायु अकेला रह जाता है। पर वह शरीराकार ही रह जाता है। फिर वहां से निकल कर मूर्ध्नि आकाश में जा मिलता है। तब इसका नाम कुण्डलिनी न रह कर मारुत होता है। पीछे यह जाग्रत हो जाती है और जीव स्वयं ही निज रूप को प्राप्त होकर सुख रूप हो जाता है। पर ये सारी बातें अनुभव से जानी जाती हैं, केवल पढ़ने से नहीं।

सम्पूर्ण जगत को जो चलाती है वह अव्यक्त कुण्डलिनी है और महा कुण्डलिनी कहलाती है तथा व्यष्टि रूप जीव को चलाने वाली व्यक्त कुण्डलिनी है।

इसकी शक्ति के व्यक्त होने के साथ ही वेग उत्पन्न होता है। उससे जो पहले स्फोट होता है उसको नाद कहते हैं। नाद से प्रकाश होता है और प्रकाश का व्यक्त रूप महा विन्दु है। जीव सृष्टि में उत्पन्न होने वाला जो नाद है वही ॐकार है। उसी को शब्द ब्रह्म कहते हैं। ॐकार से ५२ मातृकायें उत्पन्न हुईं। इनमें ५० अक्षरमय है, ५१वीं प्रकाशरूप है और ५२वीं प्रकाश का प्रवाह है। यह ५२वीं मात्रा वही है जिसे सत्रहवीं जीवन कला कहते हैं। उपर्युक्त ५० मातृकाएँ लोम और

विलोम रूप से १०० होती हैं। ये ही १०० कुण्डल हैं। इनको धारण की हुई मातृकामयी कुण्डलिनी है। इन मातृकाओं की अव्यक्त स्थिति का स्थान सहस्रारचक्र है। यहीं श्री शिवशक्ति का स्थान है। इस स्थान से उत्पन्न होने वाली जो जो मातृकायें जिस जिस स्थान में व्यक्त हुई उन उन मातृकाओं और उनके उन उन स्थानों को लोम विलोम रूप से नीचे दिखाते हैं —

क्षं

अ———अकुल———क्ष

आ———महाबिन्दु———ह

इ———उन्मना———स

ई———समना———ष

उ———व्यापिका———शं

ऊ———शक्ति———व

ऋ — नादान्त———लं

ॠं — नाद — र

लृं — रोधिनी — य

ॡं — अर्धचन्द्रिका—मं

ए——— बिन्दु ———भ

ऐ——— आज्ञा ———ब

ओ——— ललाट ——— फं

औ——— लम्बिका ——— प

अ——— विशुद्धि ——— नं

अः —— अन्तराल —— धं
क —— अनाहत —— दं
ए —— अन्तराल —— थं
ग —— अन्तराल —— तं
घं —— मणिपूर —— णं
ङं —— स्वाधिष्ठान —— ढं
चं —— आधार —— डं
छं —— विषुव —— ठ
ज —— कुलपद्म —— टं
झ —— कुला —— ञं

भ्रूमध्य में 'ह' 'सं' 'क्ष' 'सोऽहं' मन्त्र के दो बीज दिखाये हैं। इनके अन्तर्गत, ॐकार बीज से पहले स्वरोत्पत्ति, पीछे व्यञ्जनोत्पत्ति हुई। भ्रूमध्यगत आज्ञाचक्र के नीचे दूसरे चक्रों में क्रम से इस वर्णोत्पत्ति का क्रम है, यानि इन चक्रों से ही मातृकात्मक स्वर माला और वर्णमाला उत्पन्न हुई है।

इन मातृकाओं के स्थान जीव के शरीर में किस प्रकार हैं ये आगे बतलाते हैं–

अ, आ, कवर्ग, ह——कण्ठ स्थान
इ, ई, चवर्ग, य, श—तालु स्थान
ऋ, ॠ टवर्ग, र, ष—मूर्द्धा स्थान*
ऌ, ॡ, तवर्ग, ल, स —दन्त स्थान
उ, ऊ, पवर्ग———ओष्ठ स्थान×

---

* व्याकरण में जिन वर्णों का मूर्द्धा स्थान माना है, योग शास्त्र उसको जिह्वा स्थान मानते हैं। × पूरा वर्णन कल्याण योगाङ्क २९० पृष्ठ पर देखिये।

ज्ञानेन्द्रियों के स्थान सहस्रार चक्र में हैं। किसी भूली हुई बात का स्मरण करने अथवा किसी बात का विचार करने के लिए मनुष्य सिर पर हाथ रखकर आँखें बन्द करके ऊपर की ओर मुँह करता है। इस तरह से वह भूली हुई बात को याद करता है। आजकल वैज्ञानिक आविष्कारों से विचारों के फोटो तक खींचे जाते हैं। इनमें यही देखा जाता है कि विचार-मालिका सहस्रार चक्र से बाहर निकल रही है।

"डाक्टर किलनरने प्राणमयकोष (Etheric Body) को देखने के लिए ऑरोस्पेक (Aurospec) नामक चश्मा ढूँढ निकाला है। इस चश्मे से दिव्य दृष्टि होती है अर्थात् उसके द्वारा चाहे जिसका प्राणमय शरीर हम देख सकते हैं। परन्तु यह जो प्राणमय शरीर प्रकाशरूप दिखाई देता है वह प्रकाशात्मक कुण्डलिनी शक्ति के सारे शरीर में व्याप्त होने के कारण है। प्राणमय शरीर का प्रकाश रूप अपने अनुभव से तथा डाक्टर किलनर के ऑरोस्पेक से प्रत्यक्ष होता है। इससे यह सिद्ध है कि कुण्डलिनी शक्ति प्रकाश रूप है। (कल्याण योगांक पृ० ३८८)

खराब हो जायेगा और आँख ठीक हो जायेगी। ऐसा करने पर अङ्गूठा बेकार हो गया और आँख ठीक हो गई। और भी यहाँ नाड़ियों का वर्णन है। योगांक में लिखा है कि बहुतों का खयाल है कि हठयोग, राजयोग भिन्न भिन्न वस्तु हैं। पर हठयोग राजयोग की नींव कहलाता है। 'ह' माने सूर्य—पिंगला दाहिनी ओर की वायु और 'ठ' माने चन्द्र— इडा बाईं ओर की वायु। वायु को अन्दर खींचना है 'ह', और बाहर छोड़ना है 'ठ'।

इस लययोग में (कुण्डलिनी शक्तियोग) साधक सदा ही आनन्द में रहता है। उसे किसी संगिनी स्त्री की आवश्यकता नहीं, क्योंकि विद्युत्प्रवाहरूपिणी सर्वसौन्दयशालिनी सर्वरूपा सर्वसुखदायिनी कुण्डलिनी शक्ति उसके साथ है। श्री शिवराम स्वामी बतलाते हैं कि वृत्ति जिधर जाये उधर आप न जायें। पीछे, साक्षी होकर खड़े खड़े देखते रहें तो निज स्वरूप से भेंट हो जाती है। शुक्ल पक्ष में महाभाव योग से ऐसी भावना करनी चाहिए कि कुण्डलिनी शक्ति मूलाधार से सहस्रार तक चलती है और कृष्ण पक्ष में इसके विरुद्ध। प्रणव (ॐ) का ध्यान भ्रूमध्य में करें।

खेचरी मुद्रा सिद्ध करने के लिए जिह्वा-छेदन बतलाया है। फिर दोहन। कुछ बालक अपनी जीभ नासाग्र में अनायास ही लगाते हैं। ऐसी जीभ को छेदने की आवश्यकता नहीं। केवल दोहन की जरुरत है। दोहन के लिये बच (उग्रगंधा) के चूर्ण से जिह्वा को मलना चाहिए। इससे कफ आदि दोष नष्ट होते हैं। बहेड़ा के चूर्ण से दोहन करे और सैंधव लवण से जिह्वा का छिदा हुआ भाग घिसे। छेदन गुरु के समीप रहकर ही करे। डाक्टर से ऐसा कराने से वाक्‌शक्ति नष्ट होती है। पूर्ण वर्णन के लिये कल्याण योगांक ४०२ पृष्ठ देखिये। इस कुण्डलिनी की गति मैडम ब्लेवेट्स्की ने प्रकाश की गति से तेज यानि प्रकाश १,८५,०००

मील प्रति सेकण्ड और कुण्डलिनी ३,४५,००० मील प्रति सेकण्ड चलती बताई है। इस तरह से कुण्डलिनी के विषय में बहुत जगह वर्णन आया है। यदि किसी को इसके विषय में और भी विस्तृत ज्ञान प्राप्त करना हो तो अंग्रेजी में लिखित कलकत्ता हाईकोर्ट के भूतपूर्व जज सर जान वुडरफ की 'दी सरपेन्ट पावर' *(The Serpent Power)* ग्रन्थ, बम्बई के डाक्टर वसन्त रेले ऐफ० सी० पी० ऐम० ऐल०ऐम०ऐस० की *'The Mysterious Kundalini'*, स्वामी विवेकानन्द की पुस्तक 'राजयोग', श्री ज्ञानेश्वर महाराज की पुस्तक 'गीताभाष्य' छठा अध्याय', *'The Voice of the Silence'*, 'तत्त्वसार', हडसन साहब की *'Science of Seership'* पुस्तक, कल्याण के योगाङ्क व शक्ति अंकों में जो कई लेख कुण्डलिनी पर हैं उन्हें पढ़ें और मनन करें। कुण्डलिनी जाग्रत करके मनुष्य ईश्वरभाव को प्राप्त करके सर्व शक्तिमान् होकर मुक्ति प्राप्त कर सकता है। यही मनुष्य का अन्तिम ध्येय है जो इस ग्रन्थ से प्राप्त हो सकता है। अतः यह पठन और मनन करने योग्य है। कुण्डलिनी का वर्णन 'शिवस्वरोदय' श्लोक २३ में आया है। ग्रन्थों व लेखों को देखकर मैं अपनी बुद्धि के अनुसार यह परिणाम निकालता हूँ कि यह एक शक्ति है जो जाग्रत की जा सकती है। डाक्टर रेले ने लिखा है कि यह वेगस नव है, वह गलत मालूम पड़ता है। नीचे लिखे कारणों से कुण्डलिनी शक्ति का यह जाग्रतस्थान मलद्वार और मूत्रद्वार के बीच में जो मूलाधार चक्र है उसके मध्य में ही होना सिद्ध होता है —

(१) जैसे पृथ्वी पर विषुवत् रेखा प्रधान है वैसे ही इस शरीर पर भी यह उक्तस्थान प्रधान है।

(२) शरीर के प्रधान अङ्गों में से मलद्वार और मूत्रद्वार प्रधान हैं और इन दोनों का यह मध्य है।

(३) उक्त मध्य स्थान से ही सारे शरीर को रोमांच करने की क्रियायें होती हैं।

(४) वीर्य जो शरीर का सम्राट् है उसको ऊर्ध्वगामी करने के लिये इसी उक्त स्थान पर आसनों द्वारा दबाने की क्रियायें करने का विधान है। वीर्य के ऊर्ध्वगामी होने से ही यौगिक क्रियाओं को प्रोत्साहन मिलता है और ब्रह्मचर्यबल प्रकट होता है जो अनुपम है। और इन ऊर्ध्वगामी क्रियाओं से ही 'कुण्डलिनी शक्ति' का प्रकट होना भी एक तथ्य है।

उक्त व्यावहारिक कारणों को देखते हुए कुण्डलिनी शक्ति को जाग्रत करने के लिये विज्ञजनों को उक्त मध्य स्थान ही मानना आवश्यक हो जाता है। इसका अनुभव मैं तो कर ही रहा हूँ परन्तु पाठकों को भी इस ओर ध्यान देकर मनन करना चाहिये।

वैसे तो उक्त शक्ति सारे शरीर में व्याप्त है परन्तु उसको जाग्रत करने की क्रियायें क्या हैं? कैसी हैं? किस प्रकार व्यवहार में लाई जा सकती हैं? आदि प्रश्नों के उत्तर के लिये ही उक्त विवेचन मैंने ग्रन्थों में और विद्वानों से जो पढा व सुना है उसके अनुसार आचरण कर उसी अनुभव के आधार पर मैंने उक्त तथ्य आपके सामने रक्खे हैं।

उपर्युक्त योगों में से कोई योग साधक अपनी इच्छानुसार पूर्णरूपेण साधले तो प्राय सभी योग स्वतः सध जायेंगे। एक के साधने से भी बड़ी शांति और आनन्द प्राप्त होगा और साधक को प्रतीत होगा कि वह स्वयम्भू भगवान् में विलीन हो गया है। उक्त प्रतिपादित योगों में स्वरयोग तो थोडे प्रयास से ही साधा जा सकता है और लगातार इस ओर प्रयास करते रहने से एवं इस पुस्तक में बतलाये विधान को व्यवहार में लेते रहने से स्वरयोग साधन में शीघ्र गति हो जायगी और

इसी से सर्वसिद्धि प्राप्त हो सकती है। विशेषतया यह स्वरयोग प्रत्यक्ष हस्तामलकवत् है।

भविष्य में इस विषय पर जो खोज होगी एवं मुझे जो प्रकाश मिलेगा मैं उसको इसी पुस्तक के नये संस्करण द्वारा आपके समक्ष रखने को उद्यत होऊँगा।

सप्तदश प्रकाश

उपसंहार

यह संसार में मानी हुई बात है कि एशिया धर्मों एवं दार्शनिक विचारों की जन्म-भूमि है तथा योरप भौतिक विकाश की। इसमें भी भारत-भूमि सबसे उत्तम उर्वरा है, अर्थात् आर्य अथवा हिन्दुधर्म, बौद्धधर्म, जैनधर्म इत्यादि कई बड़े-बड़े धर्मों ने यहीं इस भारतवर्ष में जन्म ग्रहण किया। इस पर भी वैदिक धर्म सबसे प्राचीन एवं सम्पन्न है। वैदिक धर्म का ज्ञानकाण्ड अर्थात् उपनिषद या दर्शन शास्त्र मानव जाति के साहित्य में सर्वोपरि है।

स्वरोदय शास्त्र का वैदिक साहित्य से क्या सम्बन्ध है, यह लिखने के पूर्व हम ससार के धर्मों के मोटे-मोटे सिद्धांतों के विषय में चर्चा करेंगे। हिन्दु, बौद्ध, जैन, ईसाई, मुस्लिम तथा दूसरे सब धर्म मानव की समानता पर जोर देते हैं और मनुष्य-मनुष्य के परस्पर बन्धुत्व का उपदेश देते हैं। सारांश, विश्व-बन्धुत्व सबका ध्येय है। परन्तु वैदिक धर्म का अद्वैत-वाद इससे एक कदम आगे बढता है। इस सिद्धात के अनुसार विश्व भर में एक ही परमात्म तत्व के अतिरिक्त कोई दूसरी वस्तु है ही नहीं। यह सहज में ही समझ में आ जायगा कि सब मनुष्यों को या इससे बढकर सब प्राणियों को अपने भाई के सदृश समझने तथा अपने एवं दूसरे व्यक्ति — अर्थात् चर-अचर सबमें कोई भिन्न-भाव न देखने में कितना अन्तर है। प्रत्यक्षत. पीछे वाला सिद्धात अधिक व्यापक, अधिक उदात्त है। जब एक व्यक्ति

सबके साथ अपने आप का सा व्यवहार करेगा तो फिर भेदभाव का अवकाश ही नहीं रह जाता है।

यह सिद्धांत अहिंसा की पराकाष्ठा है। प्राय सब धर्मों में सत्य एवं अहिंसा को सबसे प्रथम स्थान दिया जाता है। मनु भगवान ने कहा है, "अहिंसा स द-मस्तेयं शौच-मिन्द्रिय निग्रह" इसमें अहिंसा तथा सत्य के अतिरिक्त अस्तेय अर्थात् पराई वस्तु की चोरी, शौच यानि भीतर बाहिर की शुद्धि, और इन्द्रियों को वश में रखना, ये सिद्धांत धर्म के दूसरे लक्षण बतलाए हैं। सूक्ष्म विचार करने से ये सब सत्य एव अहिंसा के गर्भ में आ जाते हैं। "अहिंसा परमो धर्म" ऋषियों का एक सार स्वतन्त्र सिद्धांत है वह महाभारत में इस प्रकार व्यक्त किया गया है—

अहिंसा सत्यवचन सर्वभूतहित परम् ।
अहिंसा परमोधर्मः स च सत्ये प्रतिष्ठित ॥

सांसारिक जीवन में कभी कभी मनुष्य के सामने ऐसी समस्याएं आ उपस्थित होती हैं जिनमें इन सिद्धांतों या लक्षणों में से एक से अधिक या दो में परस्पर विरोध प्रतीत होने लगता है तथा किसी कार्य के समय सत्य और अहिंसा के बीच में भी विरोध खड़ा हो जाता है और मनुष्य के सामने प्रश्न या पैदा होता है कि उस समय किसका पलड़ा भारी है। ऐसी द्विविधा के समय के लिये हमारे शास्त्रों ने अनेक विवेचन हैं। उनका निष्कर्ष नीचे के श्लोक में आ जाता है—

धर्मं यो बाधते धर्मो न स धर्म कुधर्म तत् ।
अविरोधात्तु यो धर्मः स धर्म सत्यविक्रम ॥

वस्तु में छहों रसों का मिश्रण रहता है परन्तु एक रस जैसे मधुर या खट्टा प्रधान होता है और दूसरे उसके गर्भ में समा जाते हैं और वह वस्तु-विशेष उसी एक रस की कहलाती है यथा मीठी या खट्टी। इसी प्रकार इनमें से धर्म के एक ही लक्षण या सिद्धांत में दूसरे विलीन हो जाते हैं। हाथी के पांव में सबका पांव।

जैन धर्म के एक सम्प्रदाय के वर्तमान आचार्य श्री तुलसी ने "अणुव्रत" का उपदेश दिया है। इसमें उक्त धर्म-लक्षणों को विस्तार से बतलाकर उनपर चलने का आदेश किया है। साथ में इस समय भ्रष्टाचार आदि प्रचलित बुराइयों के निराकरण के मार्ग भी दिखलाए हैं। वैसे तो बौद्ध, जैन, सिक्ख आदि धर्म आर्य या हिन्दु धर्म के ही कुटुम्बी-जन हैं फिर भी इन अणुव्रतों और उक्त लक्षणों में कोई भेद नहीं है।

भारतीय दर्शन के छ अंग हैं, जैसे सांख्य, योग, वैशेषिक, न्याय, मीमांसा (पूर्व मीमांसा), वेदान्त (उत्तर मीमांसा)। ऊपर पुस्तक में वर्णन के अनुसार स्वरविज्ञान लययोग का अंग है। योग शास्त्र वह शास्त्र है जिसमें साधनाओं द्वारा परमात्म तत्त्व को पहचानने की विधि बतलाई गई है। इस में यम, नियम आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि आदि अनेक विधियों का विवेचन है। अन्तिम ध्येय उसी परमात्म तत्त्व की अनुभूति है जो अद्वैत के नाम से पुकारी जाती है। यह वह स्थिति है जब मनुष्य आत्मा और परमात्मा में, या दूसरे शब्दों में उसी तत्त्व की अभिव्यक्ति के रूप से सारे विश्व में, एकाकार वृत्ति मान करने लगता है। उसके अपना तथा पराया का भेद मिट जाता है। वह सुख-दुःख, लाभ-हानि, मान-अपमान आदि के द्वन्द्वों से अतीत हो जाता है। यह एक ऐसी स्थिति है जब विश्व के सत् या सत्य तत्त्व से साक्षात्कार हो जाता है। अहिंसा तो उसके पहले की सीढ़ी रह जाती है। "यस्मान्नो द्विजते लोको लोकान्नो

द्विजते च यः" न उससे किसी भी व्यक्ति या प्राणी को उद्वेग होता है, न उसे किसी से उद्वेग होता है, "यस्तु सर्वाणिभूतानि आत्मन्येवानुपश्यति सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजिगुप्सते," सब भूतप्राणियों में अपने समान और सब प्राणियों में अपने आपको देखने की अनुभूति हो जाने पर फिर ईर्षा, द्वेष आदि का जो हिंसा के कारण हैं, कहां अवकाश रह जाता है ?

हिन्दु धर्मावलम्बियों के प्रत्येक धार्मिक—यहां धर्म बड़ा व्यापक शब्द है—कार्यों के पूर्व शान्ति पाठ होता है। और तो और प्रत्येक उपनिषद् के आदि अन्त में ऐसे ही शान्ति पाठ हैं और उनके अन्त में "ॐ शान्ति शान्ति शान्ति" ये शब्द उच्चारण किये जाते हैं और उच्चारण किये जाते हैं शुद्ध भावना से। भावना और वास्तविकता के बीच यदि कोई व्यक्ति कुछ अन्तर मानता हो तो, हम यहां केवल इतना ही कहना पर्याप्त समझते हैं कि गत महायुद्ध के समय "V" अक्षर का इतना प्रचार क्यों किया गया था ? यही "V" या 'वि' अक्षर Victory अथवा विजय की भावना निर्माण करने के उद्देश्य से न थी ? अस्तु।

कहने का तात्पर्य यह है कि भावना ही मनुष्य के प्रत्येक कार्य में प्रधान है। इसी भावना के बनाने का प्रत्येक हिन्दुशास्त्र में उपदेश है और फलित ज्योतिष भी शास्त्र भी इसका कट्टर पक्षपाती है। सारांश, स्वर विज्ञान अहिंसा सत्य, सुन्दरता अद्वैत वाद आदि ज्वलन्त तथा आदर्श रूप सिद्धान्तों का समर्थक तथा पोषक है।

हां, इस शास्त्र में भी कुछ ऐसे कार्यों की चर्चा मिलेगी जो इन सिद्धान्तों के विपरीत जाते हुए प्रतीत होंगे, परन्तु वे अपवाद रूप हैं। शास्त्र में न केवल विषय के सारे अंग उपांगों का विवेचन होता है। परन्तु उनमें ऊपर लिखे अनुसार दो सिद्धान्तों के विरोध के अवसर पर उनकी परस्पर तुलना कर तथा शास्त्र दृष्टि से मान्यता निश्चय कर अपना कर्तव्य निर्धारित करना पड़ता है। इसी प्रकार इन नियमों का निश्चय किया

जाता है। वास्तविक वस्तु, जिस पर भले बुरे का निर्धार किया जाता है, कर्त्ता की मनोभावना के आधार पर आंकी जाती है। प्रचलित कानूनों में भी intension यानि मंशा, दोष का निश्चय करने मे, बड़ा महत्व रखती है। इस प्रकार से एक सच्चा योगी कभी कोई पाप नहीं करता—

ब्रह्मण्याधाय कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा करोति यः।
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्र-मिवाम्भसा ॥

अन्त में हम यह कह कर समाप्त करते हैं कि स्वर योग का साधक श्वास, प्रश्वास, प्राण, तथा उनके नियमन के द्वारा आत्मा और परमात्मा का साक्षात् रूप जानने को प्रयत्नशील होता है, और उसका भी अन्त में ध्येय वही है जो एक कर्म-योगी, सांख्य-योगी, ज्ञान-योगी या भक्त का होता है। मार्ग अलग अलग हैं परन्तु लक्ष्य एक ही है। वैदिक धर्म में ये मार्ग भिन्न भिन्न होते हुए भी एक ही लक्ष्य पर पहुँचते हैं

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, न कश्चिद् दुःख भाग् भवेद ॥

सब लोग सुखी रहें, सब नीरोग रहें, सब मङ्गल देखें, तथा कोई भी दुःखी न रहे। यह हमारा उद्देश्य है।

ॐ शांति शांति शांतिः
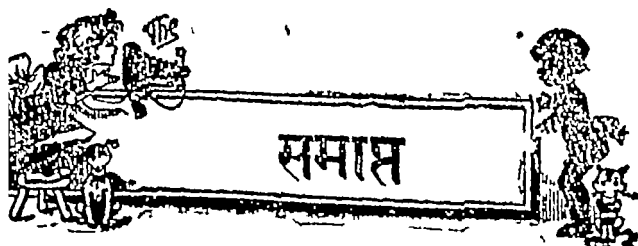
कुछ सम्मतियाँ—

हस्त रेखाविज्ञानविषयकं ज्योतिषशास्त्र नैपुण्य-प्रज्ञापकञ्च प्रशस्तिपत्रम्

मया विक्रमपुरनगरे (बीकानेरे) यानि विचित्राणि अवलोकितानि तेष्वेकमिदं पत्रेऽस्मिन् साश्चर्यम् आवेद्यते । सरदारशहर निवासिनामद्य च श्री राजकीय (तहसीलदार) पदमलङ्कृत्य कार्याणि तदधिकारोचितानि कुर्वता महानुभवेनालङ्कृतानां रामेश्वरलालशर्मणाम् दैवसमागमोपस्थिता तदेव पाणिरेखातत्त्वविज्ञानकौशलं समवलोक्य परमविस्मयं गतः । चलितमात्रमेव स्वहस्तेनावलोकितानि अतीतानि, अनागतानि श्रुत्वा सविशेषञ्च वर्तमानानि । निरपदेशमेतं शोभनं पर्याप्तञ्च हस्तगतं विज्ञानं हस्तगतमकारि । कुण्डलीगत ग्रहफल निर्देशकौशलञ्च । एवमेषां स्वरोदयविद्यामपि प्रशंसितुं मुहुर्मुहुः प्रयत्न एव वाङ्मनसी । इमे नागरिकं विद्यामिमामपहाय न पदात् पदमपि गच्छन्ति । दृष्टश्चैषां स्वरपरिवर्तनक्रमः । एवमेते महानुभावा महता श्रमेण विद्याभ्यासं समुपमाचरन्ति प्रकाशयन्ति च लोककल्याणाय । एतत्प्रयोगेषु लब्धफलोऽस्मि चेति स्वहस्तेनेति ।

[illegible] केसरीप्रसादः शास्त्री

K. Dave

Station Master

Porbander (Saurastra)

Heartiest greetings for happy and prosperous new year with all the best wishes. Once more I

thank you that I got some vision from your book of Swarodaya.

———

Bhagwan Sahai
B.A., LL.B., D.L.S.G.

Mahadev Lodge
Purani Basti
Jaipur 31-3-1947

मैंने प० रामेश्वरलालजी शर्मा तहसीलदार रामगढ़ लिखित 'तेज स्वरोदय विज्ञान' पुस्तक को पढ़ा। इस पुस्तक द्वारा तहसीलदारजी ने हमारे देश के प्राचीन एवं छुपे हुये विज्ञान को प्रकाश में लाने का जो उपाय किया है वह सराहनीय है। स्वर-विज्ञान का ज्योतिष एव आयुर्वेद विज्ञान के साथ जो सम्बन्ध बतलाया गया है वह लेखक के विषय ज्ञान का द्योतक है। प० जी ने स्वर विज्ञान के अपने अनुभवों को लिखकर इस पुस्तक को सर्व साधारण के लिये अधिक लाभप्रद बना दिया है।

आशा है सर्व साधारण जनता इस पुस्तक से लाभ उठावेगी।

भगवानसहाय जोशी

———

I am highly grateful for your correct reading of my hand last year when I was under suspension. At that time you told me very heartening news after seeing my hand that I will be re-instated within a month and you will be glad to know that exactly the same thing happened,

although the circumstances were against me. I have come across many a palmists but never before I got such satisfactory and cent percent correct reading of my fortune. My best wishes are with you and oblige.

Sd/–Shri Amrit Singh
Chak No. 7 G B.
Tehsil Anoop Garh
Bikaner State
(P.I. Sadar)

D/-27-1-48

It gives me great pleasure to certify that Shri Rameshwar Lall, B A, LL.B. Tehsildar Ratangarh, has sound knowledge in Palmistry and Astrology In last summer I had the honour to consult him regarding my revision petition pending in the Rajasthan Government for my reinstatement on the post of Prosecuting Inspector and he very frankly prophesied for my failure in it. Although my case had been recommended by my officers, and I was confident of my success but I met failure in it and thereby the prophecy turned to be true.

Now I will fight against the illegal orders passed on my revision petition.

Sd– Chela Ram, B.A. LL.B.
Prosecuting Sub-Inspector
RATANGARH

मैं बहुत से ज्योतिषियों से मिला जो विशेष बातें श्री पं० रामेश्वरलालजी ने बतलाई वे सभी ज्योतिषियों के विरुद्ध और सही निकलीं।

लाधूराम, सरदारशहर

प० रामेश्वरलालजी, बी. ए., एल.एल. बी., का सामुद्रिक शास्त्र व ज्योतिष का ज्ञान गम्भीर है। मेरी ३६ वर्ष की अवस्था में सभी ज्योतिषियों ने शनि की महादशा होने से मारक दशा बतलाई और मैं भी स्वयं ज्योतिषी हूँ। मुझे इस दशा का रातदिन खतरा बना रहता था परन्तु जब मैंने प० रामेश्वरलालजी को यह बतलाया तथा हस्तरेखा दिखलाई तब उन्होंने विश्वास दिलाया तथा मेरा सन्देह दूर किया और दृढ विश्वास पूर्वक कहा कि आपका बाल भी बांका नहीं हो सकता यह अक्षरशः सत्य निकला

—बालूराम देरासरी

कुछ सम्मतियाँ—

STANDARD CHEMICALS

Manufacturers of

Cosmetics add Toilet Requisites.

Bankers Sawai Man Singh Highway

The Bank of Jaipur Ltd. Jaipur (Rajasthan)

26-7-50

I have pleasure in certifying that Pt. Rameshwarlal jee, B A., LL.B. of Ratangarh has a very deep knowledge in Palmistry and his forecast has reality to a great extent.

I would strongly recommend him to those who feel like getting a view of their future and I hope they will find his reading as I have found to be absolutely true.

I wish him success in his hobby.

Sd- G.P. Shah,

Proprietor,

Standard Chemicals,

JAIPUR

— ——

कुछ सम्मतियाँ—

"तेज स्वरोदय विज्ञान" नामी पुस्तक जिसके कि लेखक श्री रामेश्वरलाल शर्मा हैं, मैंने पढ़ी। यह पुस्तक स्वरोदय विज्ञान पर हिन्दी साहित्य की न्यूनता को पूर्ति करने में एक महत्वपूर्ण पुस्तक है। जबकि हम हिन्दी को राष्ट्र-भाषा बनाने जा रहे हैं, ऐसी पुस्तक लिखना राष्ट्र की सेवा करना है। विशेषकर यह जानकर मुझे, एस पुस्तक के लेखक एक तहसीलदार हैं, बहुत ही हर्ष होता है। तहसीलदार वर्ग में ऐसी भावना होना इस विषय का द्योतक है कि वह उनके कार्य को सेवा भाव से करते हैं। क्या ही उत्तम हो कि अन्य कर्मचारी भी इनसे प्रेरणा लें। लेखक के इस परिश्रम से हिन्दी जानने वाली जनता लाभ उठायेगी इसके लिये मैं उन्हें धन्यवाद देते हुए आशा करता हूँ कि इसी प्रकार हिन्दी साहित्य को बढाने का ध्यान रक्खें। इति·

केशरीसिंह राणावत
आई. ए. एस.
चेयरमैन,
बोर्ड ऑफ रेवन्यु, जयपुर

———

५७.	हासिया	सूर्योदय काल के पहले लक्षण का मूल्य	सूर्योदय काल के पहले वर्ण का मूल्य
५६.	अन्तिम	वादन वर्त्तन	वादन नर्त्तन
६३	हासिया	स्वर और मन्त्र बल का सानिध्य	स्वर और मन्त्र बल का सान्निध्य
७२	नीचे से ११	शत्रु सम्मान	शत्रु समान
७३.	नीचे से १२	जारही रही	जारही
७४.	अन्तिम	बहता हो तो	बहता हो
६७.	नीचे से ३	स्वण आर	स्वर्ण और
६७	नीचे से ७	काले वण	काले वर्ण
६८.	नीचे से ३	चलते हुए भी	चलते हुए भी
१०८.	नीचे से १२	रोगी के समय	रोगी का उस समय
१०६.	नीचे से ६	सहस्र	सहस्र
१०६.	नीचे से ६	गुदा द्वारा	गुदा द्वार
११५.	नीचे से १०	मनो वाञ्छिल	मनोवाञ्छित
१२६	ऊपर से ८	इस लए	इस लिए
१३०	नीचे से ८	त्रिघुल्लतता	विद्युल्लता
१३५.	ऊपर से ७	कर्तत्व शील	कर्तृत्व शील
१३६	ऊपर से ६	अ	अं
१४०.	ऊपर से ३	ख	ए
१४०.	ऊपर से ११	घ	घ
१४२.	ऊपर से ६	संर्वकषा	सर्वंकषा

कुछ सम्मतियाँ—

श्रीमान दुर्गाप्रसादजी असिस्टेण्ट कलेक्टर, श्रीगंगानगर

पं० रामेश्वरलाल शर्मा लिखित "नेत्र स्वरोदय विज्ञान" पुस्तक पढ़ी मनन जैसा सुना था वैसा ही उससे फल प्राप्त हुआ। इससे अभूतपूर्व आधिभौतिक धिदैविक फल प्राप्त हुए। इच्छानुसार धनप्राप्ति, पुत्रप्राप्ति व सुखप्राप्ति हुई। मनो न्छित कार्य सिद्ध हुए। इससे पढ़नेवाला पूर्ण आनन्द प्राप्त करेगा। इस तक से प्राचीन लुप्त भारतीय विज्ञान प्रकाश में आवेगा। यह पुस्तक भूत, ष्य व वर्तमान का सही ज्ञान कराकर सुधारने का उपाय बताकर प्राचीन विद्या खोज में पूर्ण सहायक है।